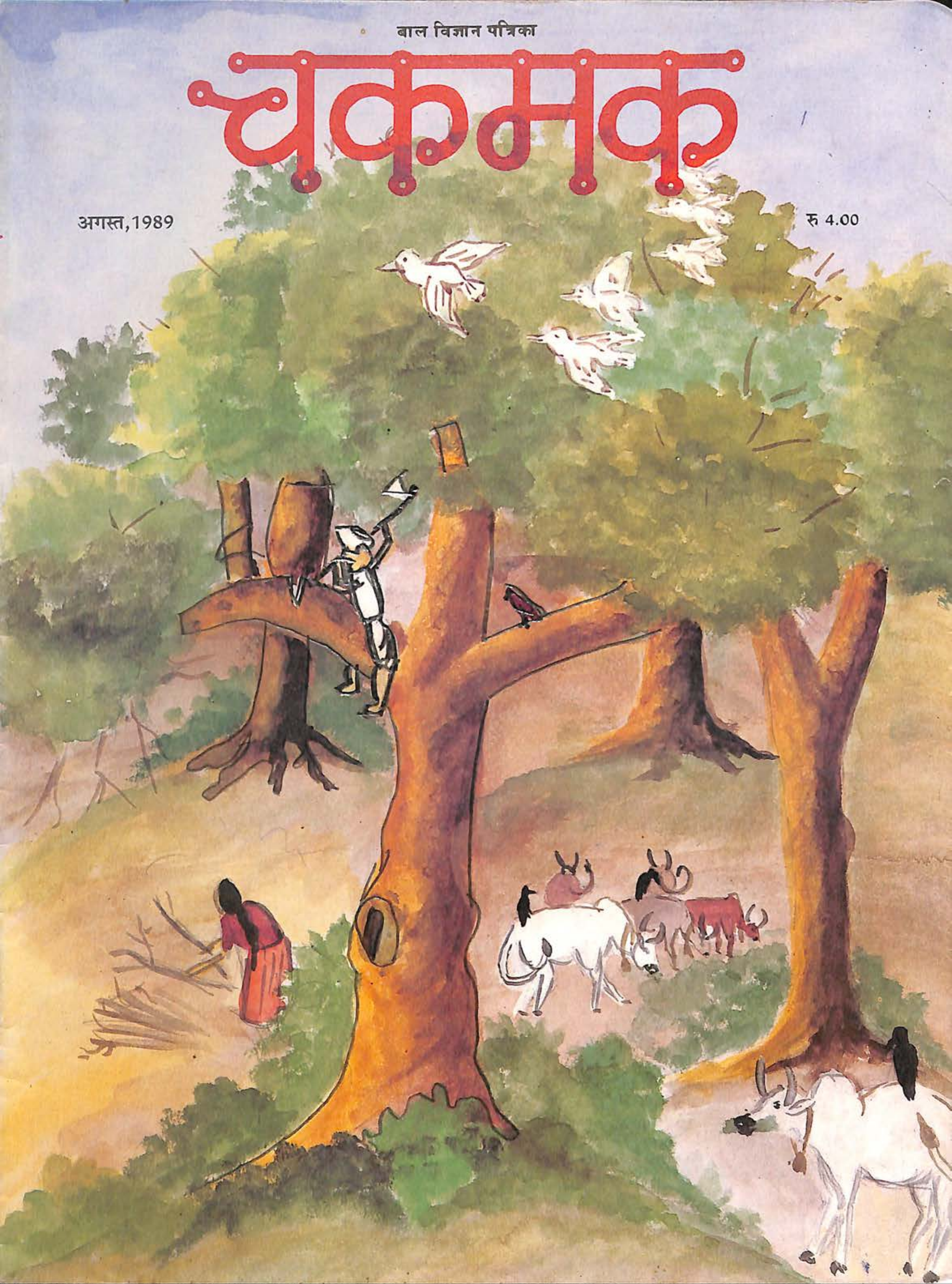
बाल विज्ञान पत्रिका

चकमक

अगस्त, 1989

रु 4.00





पत्तियों से बने चित्र : इंदौर रंग शिविर में।

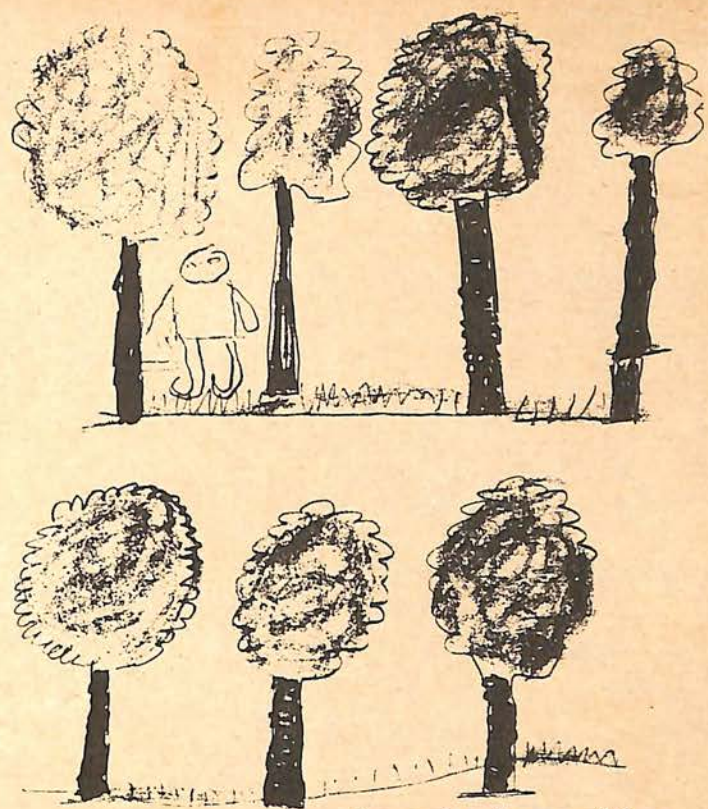


चकमक बाल विज्ञान पत्रिका
वर्ष 5 अंक 2 अगस्त, 1989
संपादक
विनोद रायना
सह-संपादक
राजेश उत्साही
कला
जया विवेक
उत्पादन/वितरण
हिमांशु बिस्वास, कमलसिंह

चकमक का चंदा
एक प्रति : चार रुपए
छमाही : बीस रुपए
वार्षिक : चालीस रुपए
डाक खर्च मुफ्त
चंदा, मनीआर्डर या बैंक ड्राफ्ट से एकलव्य के नाम पर भेजें।
कृपया चेक न भेजें।

पत्र/चंदा/रचना भेजने का पता :
एकलव्य,
ई-1/208, अरेरा कालोनी,
भोपाल-462 016 (म.प्र.).

कागज़ : 'यूनिसेफ' के सौजन्य से
सहयोग : राष्ट्रीय विज्ञान व प्रौद्योगिकी संचार परिषद् (विज्ञान व प्रौद्योगिकी विभाग, नई दिल्ली)



चित्र : प्रशांत वडनेर, बारह वर्ष, देवास

इस अंक में...

आवरण : कृष्णकांत गोधने

जुलाई, 89 अंक में 'पतंगों की दुनिया' की सामग्री तैयार की थी जयपुर की स्मिता अग्रवाल ने। भूलवश उनका नाम नहीं गया। इसका हमें खेद है। सं.

एकलव्य एक स्वैच्छिक संस्था है जो शिक्षा, जनविज्ञान एवं अन्य क्षेत्रों में कार्यरत है। चकमक, एकलव्य द्वारा प्रकाशित अव्यवसायिक पत्रिका है। चकमक का उद्देश्य बच्चों की स्वाभाविक अभिव्यक्ति, कल्पनाशीलता, कौशल और सोच को स्थानीय परिवेश में विकसित करना है।

पाठक लिखते हैं

आपने हमारे बच्चों के चित्र प्रकाशित करके उन्हें चित्रकला में ही नहीं, प्रकृति व अध्ययन प्रिय बना दिया है। आजकल बच्चे आपकी चकमक के नियमित पाठक बन गए हैं। चकमक आते ही बच्चों में पत्रिका पढ़ने के लिए खींचतान मच जाती है। चकमक में अपनी प्रयोगशाला,सवालीराम व माथापच्ची बच्चे बहुत पसंद करते हैं। माथापच्ची हल करने की कोशिश भी करते हैं और अगले अंक में उत्तर का इंतज़ार भी।

☐ गणेशलाल शिक्षा निकेतन
समाजकार्य एवं अनुसंधान केंद्र,
तिलोनिया, राजस्थान

आपकी संस्था के द्वारा चकमक का प्रकाशन होता है। चकमक अपने आप में स्वयंपूर्ण तथा तेजोमय पत्रिका है। विज्ञान प्रसार का कार्य लक्षणीय है।

विज्ञान प्रसार के इस कार्य के लिए केंद्रीय मंत्रालय की तरफ से आपको पुरस्कार प्राप्त हुआ है, यह पढ़कर खुशी हुई।

आपके अनोखे कार्य के लिए हार्दिक शुभकामनाएं।

☐ विलास चाफेकर
संपादक, निर्मल रानवारा मराठी
बाल पत्रिका, पुणे

अकस्मात एक दिन चकमक पत्रिका देखने को मिली। बड़ी खुशी हुई कि हमारे प्रदेश से भी ऐसी पत्रिका निकल रही है।

☐ कुंवर प्रेमिल, जबलपुर

पिछले दो वर्ष से लगातार चकमक पढ़ रहा हूं। बालविज्ञान पत्रिका बालकों के लिए सार्थक है। परंतु 'खतरा : स्कूल' धारावाहिक कितना खतरनाक खतरा हमें बताता है। विडम्बना यही है कि हममें से अधिकांश इस खतरे की चेतावनी से अपरिचित हैं। आपने कितना खतरा उठाकर हम सब को इसके प्रति सचेत करने का बिगुल बजाया है। हम सब की यही कोशिश होनी चाहिए कि आपकी ध्वनि कहीं निरर्थक शोर के अंतर्गत मंद न पड़ जाए। और इसी उम्मीद के साथ कि इससे यदि थोड़े से भी सोए हुए व्यक्तियों की नींद में खलल पड़ सका तो इस बात से भी इंकार नहीं किया जा सकता कि खतरा टल जाए।

☐ वेदप्रिया, भिवानी

राष्ट्रीय विज्ञान एवं प्रोद्योगिकी संचार परिषद् का राष्ट्रीय पुरस्कार प्राप्त करने पर मैं आपको हार्दिक बधाई देता हूं। आपकी पत्रिका जिस ढंग से निकल रही है और आप बच्चों को जो दे रहे हैं इन बातों का मैं विशेष रूप से अभिनंदन करता हूं।

☐ हरीश नायक, अहमदाबाद

संयोग से मुझे चकमक अप्रैल, 89 का अंक देखने को मिला। बधाई, इतने सुंदर प्रकाशन के लिए।

☐ रमेश बक्षी, दिल्ली

हम आपको सूचित करना चाहते हैं कि पर्यावरण संरक्षण एवं पुनरुद्धार के सिलसिले में विभिन्न कार्यक्रमों के अंतर्गत विद्यालयों के छात्रों के बीच विभिन्न प्रतियोगिताओं का आयोजन पिछले अनेक वर्षों से कर रहे हैं। इस वर्ष कुल 25 छात्र-छात्राओं को विभिन्न प्रतियोगिताओं में पुरस्कृत किया गया है। हमने यह निर्णय लिया है कि इन छात्र-छात्राओं को आपके द्वारा प्रकाशित पत्रिका चकमक तीन माह तक भेजी जाए। छात्र-छात्राओं का पता तथा आवश्यक राशि अलग से भेजी जा रही है।

☐ छत्रधारी सिंह,
सघन क्षेत्र विकास समिति
सेवापुरी, वाराणसी

चकमक दोस्त

1. भीमसेन गुप्ता, ग्यारहवीं
2. क्रिकेट खेलना, चकमक पढ़ना
3. अंबिकापुर रोड, पत्थलगांव, रायगढ़

1. गोपाल कृष्ण वर्मा, 14 वर्ष
2. कहानी पढ़ना, क्रिकेट खेलना
3. शा.उ.मा.वि. क्रमांक-1, सांवेर, इंदौर

1. अभय प्रतापसिंह दीक्षित, 16 वर्ष
2. टिकट संग्रह, पुस्तक पढ़ना, क्रिकेट खेलना
3. ग्राम/पोस्ट-परासी, मरवाही, बिलासपुर

1. ऋषि कुमार दीक्षित, 13 वर्ष
2. घूमना-फिरना, टी.वी. देखना, क्रिकेट खेलना
3. ग्राम/पोस्ट-परासी, मरवाही, जबलपुर

1. जितेंद्र कुमार नेताम, पांचवीं
2. पढ़ना, चित्र बनाना, शतरंज खेलना
3. ग्राम साल्के, दल्ली राजहरा, दुर्ग

1. चंदरसिंह, 16 वर्ष
2. कबड्डी खेलना
3. मा.वि. व्यावराकला, राजगढ़

1. बद्रीलाल दांगी, 16 वर्ष
2. चकमक पढ़ना, पत्र लिखना
3. मा.वि. व्यावराकला, राजगढ़

1. राजेश मिमरोट, 16 वर्ष
2. पढ़ाई करना, शतरंज खेलना
3. 78, नर्मदा भवन, अशोक नगर, उज्जैन

1. सुनील परिहार, आठवीं
2. चकमक पढ़ना, चित्रकारी

1. मनीष कुमार पिल्लई, छठवीं
2. छिपा-छिपी खेलना
3. बालक माध्यमिक विद्यालय, महिदपुर रोड, उज्जैन

1. पवन अग्रवाल, 17 वर्ष
2. पत्र-पत्रिकाएं पढ़ना, मित्रता करना, नई-नई बातें जानना
3. अलंकार लॉज के पास, हरदा

1. रघुवीर कुमार जारोलिया, आठवीं
2. केरम खेलना, पढ़ना
3. ग्राम/पोस्ट-तमता, रायगढ़

1. विकास कुमार सातले, 9 वर्ष
2. क्रिकेट खेलना, पत्र मित्रता, चकमक
3. द्वारा श्री एल.जी. लाड़, शा. हाईस्कूल, मिटावल (प. निमाड़)

1. राकेश मेघानी, 11 वर्ष
2. चकमक पढ़ना, टेबिल टेनिस खेलना

1. अनिल मेघानी, 15 वर्ष
2. फिल्म देखना

1. प्रीत मेघानी, 8 वर्ष
2. हॉकी खेलना

सबका पता : छोटी बाबू लाइन, बस स्टैंड के पास, पचमढ़ी

1. रामकुचे, 16 वर्ष
2. पत्र-पत्रिकाएं पढ़ना, इलेक्ट्रॉनिक्स
3. सेंट्रल रेल्वे सीनियर सेकेंडरी स्कूल, नयायार्ड, इटारसी

1. दीपशिखा वर्मा, 8 वर्ष
2. रस्सी कूदना, पढ़ना-लिखना
3. शा.हि. कन्या मा.वि. सांवेर, इंदौर

1. पवन कुमार वर्मा, 7 वर्ष
2. क्रिकेट खेलना, पढ़ना-लिखना
3. शा.हि.मा.वि.-2, सांवेर, इंदौर

1. मुकेश कुमार सिंह, 13 वर्ष
2. फिल्में देखना
3. डीनोबली स्कूल, सिजुआ, सातवीं, धनबाद, बिहार

वह कौन है!

कुछ दिनों पहले की बात है। रात 7-8 बजे जैसे ही मैं पढ़ने बैठा, दरवाज़े से आवाज़ आई, 'रोटी दे दो'।

आवाज़ जानी पहचानी थी, क्योंकि यही लड़का कई बार इसी तरह रोटी मांग कर ले जा चुका था। मैं इसके बारे में इतना ही जानता था कि वह मांगता है, और इसी से जी रहा है।

मैंने देखा वह उस जनवरी की कड़कड़ाती ठंड में सिर्फ एक फटी टी-शर्ट पहने था। पैरों में जूते भी थे, ढीले-ढीले से। वह ढीली-ढीली पैंट भी पहने था, जिसे देखने से साफ ज़ाहिर होता था कि यह भी मांगी हुई है और जो, इसके नाप की न थी। उसका चेहरा तो गोरा था, पर मैला-सा। बाल भी भूरे-भूरे, उलझे हुए थे। कुल मिलाकर वह नन्हा भिखारी लग रहा था। उसकी उम्र 10 साल के लगभग रही होगी।

कई दिनों से सोच रहा था, इससे इसके बारे में पूछूंगा। आज अच्छा मौका था। मैंने उससे पहला सवाल किया—

"तुम्हारा नाम क्या है?"

"रामदास।" उसने उत्तर में सिर्फ अपना नाम लिया था।

"तुम्हारे मां-बाप कहां हैं?" मैंने छूटते ही प्रश्न किया।

"पता नहीं मर गए।"

"फिर तुम्हें किसने पाला?"

"चाचा-चाची ने।"

"कहां हैं वे सब?"

"पता नहीं, कहीं चले गए छोड़कर।"

"अकेले हो?"

"हां।"

"कहां रहते हो?"

"उस सामने वाली झोपड़ी में।"

"बड़े होकर क्या करोगे?"

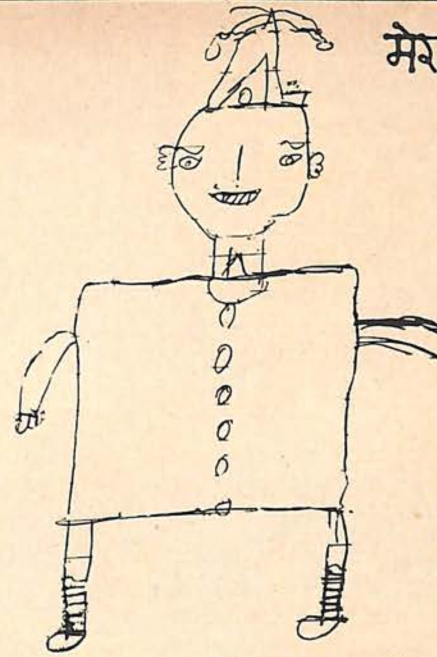
"काम।"

"क्या काम?"

"कोई भी जो मिलेगा।"

"अभी काम क्यों नहीं करते?"

"अभी छोटे हैं।" उसके जवाब में मैं उसे देखने



चित्र : रोहित, दूसरी, नागपुर

लगा था, फिर पूछा, "यहीं रहोगे या बाहर जाओगे?"

"यहीं रहेंगे। कहां जाएंगे?" उसने भी मुझ पर एक सवाल ठोक दिया। इसके बाद मैं चुप होकर कुछ सोचने लगा।

फिर मैंने शाम की बची दो रोटियां व सब्ज़ी लाकर दी। उसे कुछ पैसे भी दिए। उसने रोटियां ले लीं, पैसे जेब में रखे और चुपचाप चला गया। उसके चेहरे पर बच्चों जैसी मुस्कराहट थी। मैंने देखा उस झोपड़ी के सामने ऐसे ही बच्चे आग ज़ला कर ताप रहे थे। वह भी उन्हीं के बीच चला गया।

दूसरे दिन मेरी और उसकी मुलाकात वीडियो हॉल में हुई। मैंने देखा वह एक कोने में बैठा आराम से पिक्चर देख रहा था। मैं उसे देखता ही रह गया।

□ प्रदीप कुमार सेठ, ग्यारहवीं, सीधी

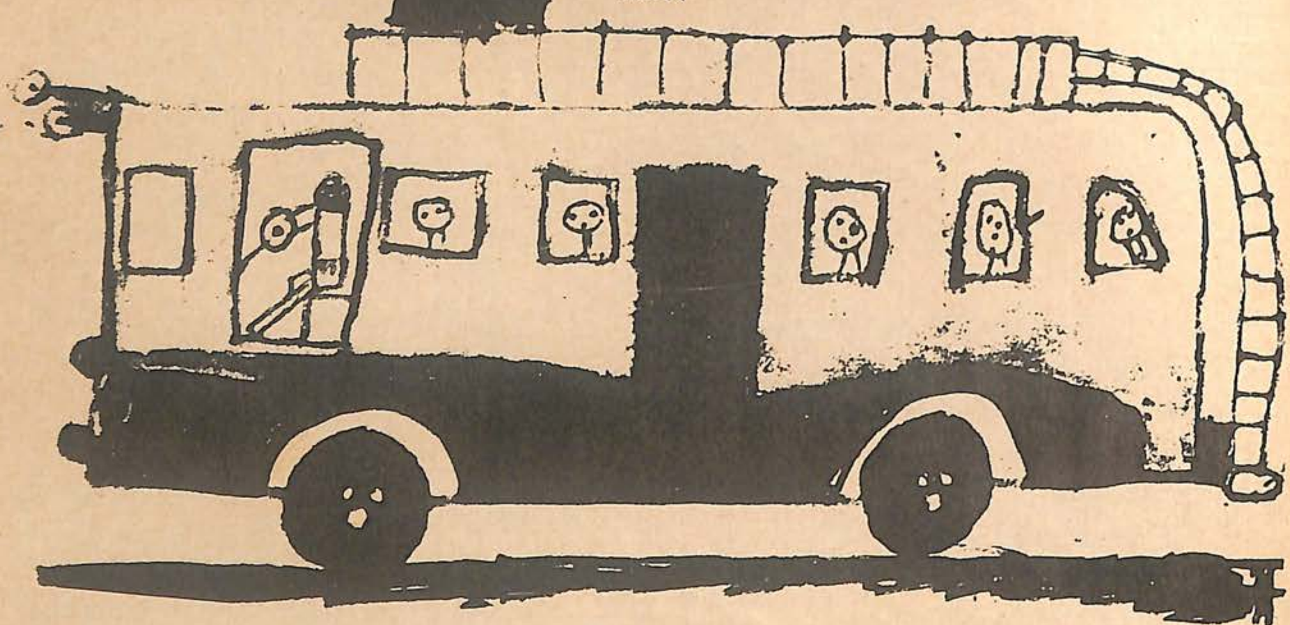
फूल तोड़ने में हुई देर

दो लड़कियां थी। दोनों स्कूल जा रही थीं। रास्ते में एक नदी पड़ी। नदी से पार हो कर बगीचे में फूल तोड़े। स्कूल जाने में हो गई देर। बहन जी ने पूछा, देर से क्यों आए। दोनों लड़की बोलीं, हम फूल तोड़ रहे थे, इसलिए देर हो गई। दोनों लड़की बोलीं, आज हम फूल के बारे में पढ़ेंगें इसलिए फूल लाए हैं। बहन जी बहुत खुश हुईं।

□ हेमंत कुमार वर्मा, छोटे डोंगर, बस्तर

(मई में प्रकाशित चित्रों पर आधारित)

यात्रा



महेन्द्र कुमार वारे, सातवीं, कोंटा, बस्तर।

एक बार मैं अपनी मां के साथ आई.एस.बी.टी. से किंग्ज़वे कैम्प (दिल्ली में) जा रहा था। जिस बस से हम जा रहे थे उसमें बहुत भीड़ थी। मेरी मां को तो कुछ लोगों ने सीट दे दी थी मगर मैं वैसे ही खड़ा रह गया।

उसी भीड़ में मैं बोनट की ओर खिसका क्योंकि बस में आगे की तरफ से बाहर की सड़क भी दिखाई दे रही थी। उस सड़क को देखने में बड़ा मज़ा आ रहा था। तभी हमारी बस रुकी और बस से बहुत से आदमी उतरने लगे। मैंने सोचा कि मुझे भी यहीं उतरना है, मैं भी उनके साथ उतर गया।

सब लोग इधर-उधर चले गए लेकिन मैं वहीं पर अपनी मां के उतरने का इंतज़ार करता रहा। परंतु मां बस से नहीं उतरी। बस कुछ समय बाद तेज़ी से दौड़ती हुई चली गई। मैं ज़ोर-ज़ोर से रोने लगा। तभी किसी बूढ़े दादाजी ने मुझे बीच सड़क से खींचकर किनारे खड़ा कर दिया। मैं बहुत देर तक वहीं खड़ा रहा। बहुत इंतज़ार के बाद मेरी मां दूसरी बस से वापस आईं। मैं तुरंत उनकी गोद में चढ़ गया।

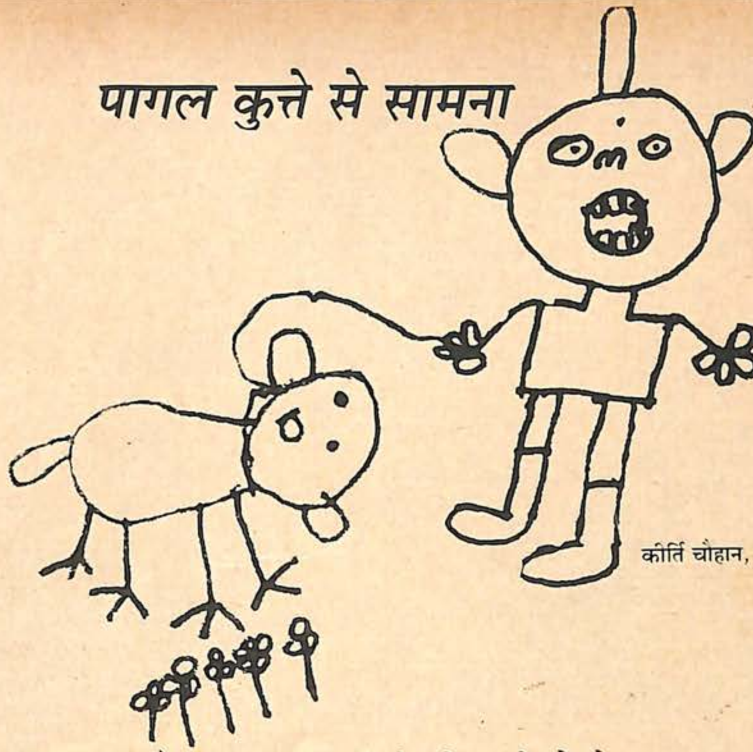
□ अतुल धीमान, पांचवीं, कोटद्वार, गढ़वाल

चंदा की टोपी

सूरज को पीली टोपी पहने देखकर चंदा ने भी अपने लिए एक दिन बाज़ार जाकर टोपी खरीदने की सोची। उसने अपने लिए एक सही नाप की नीली टोपी पसंद की। लेकिन चंदा को बड़ा आश्चर्य हुआ जब दूसरे ही दिन उसकी नई टोपी छोटी पड़ गई। उसने दुकान जाकर उसे बदल डाला। तीसरे दिन वह फिर अपनी बदली हुई टोपी के छोटे होने की शिकायत लेकर दुकान गई। दुकानदार ने उसे फिर नई टोपी दी। चौथे, पांचवें और छठवें दिन भी यही हुआ। आखिर उसने टोपी पहनने का विचार त्याग दिया और टोपी बदलने के लिए दुकान भी नहीं गई।

दुकानदार ने समझा कि चंदा को अब टोपियां बदलने की आवश्यकता नहीं है इसलिए वह दुकान नहीं आ रही है। एक दिन अचानक चौराहे पर दुकानदार की भेंट चंदा से हो गई। तो उसे मालूम हुआ कि चंदा की टोपी अब काफी छोटी हो रही है। दो-तीन दिन और दुकानदार ने चंदा की टोपी बदली लेकिन

पागल कुत्ते से सामना



कीर्ति चौहान, चार वर्ष, टिमरनी।

यह कहावत शत प्रतिशत ठीक है कि अगर आदमी शेर से न डरे तो शेर पालतू कुत्ता। बात ऐसी है कि गर्मी के दिन थे। आम पक पक के गिर रहे थे। मैं आम खाने बगीचा गया था। मैं एक आम के नीचे गया। वहीं एक पागल कुत्ता खड़ा था और मैं नहीं जानता था कि ये पागल कुत्ता है। बस गांव में ये हल्ला था कि कहीं से एक पागल कुत्ता आ गया है, जो रोज़-रोज़ कोई न कोई दुर्घटना करता रहता है। मैं निश्चिंत होकर आम खाने लगा।

मेरी नज़र उस कुत्ते पर पड़ी। मैं उसे ध्यान से देखने लगा। उस कुत्ते में मुझे पागल कुत्ते के सभी लक्षण दिखने लगे। जैसे-जैसे उसके मुंह से लार अधिक मात्रा में निकल रहा था और वह अपने गिरे हुए लार को चाट रहा था। मैं समझ रहा था कि हो न हो यही पागल कुत्ता है।

तभी दूर से किसी लड़के की आवाज़ आई, ''भागो पुष्पराज, वो पागल कुत्ता है।'' मैं भागने को हुआ कि कुत्ता मेरी तरफ बढ़ने लगा। मैंने कहीं पढ़ा था कि 'अगर कोई शेर से न डरे तो शेर पालतू कुत्ता'। यही सोचकर मैंने भागना बंद कर दिया और खड़ा हो गया। कुत्ता मेरे पास आ गया। कुत्ता जब मेरी तरफ झपटा तो मैंने कुत्ते का गला कसकर पकड़ लिया और उसे घुमाने लगा। एक-दो राउंड घुमाकर मैंने कुत्ते को फेंक दिया। कुत्ता ज़मीन पर गिरते ही दुम दबाकर भाग खड़ा हुआ। उधर वो भागा और इधर मैं घर की तरफ दौड़ा। फिर मैंने घर आकर ही दम लिया।

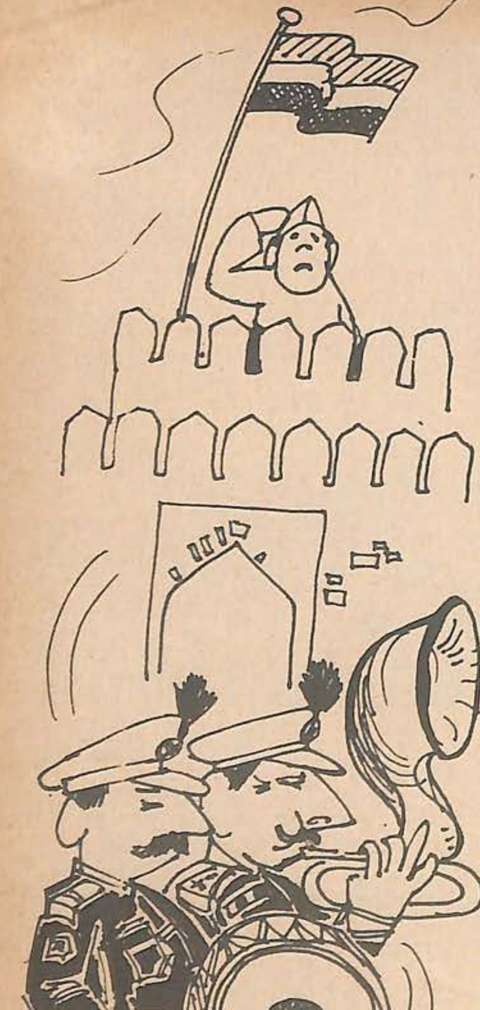
☐ पुष्पराज नारायण, शहडोल

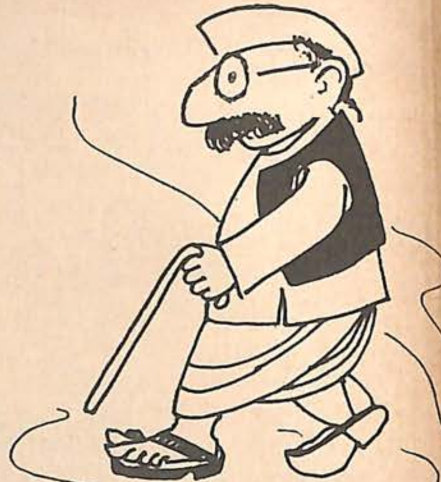
टोपी तो छोटी पड़ती ही गई। अचानक एक दिन उसकी सही माप की टोपियां उसके सिर में काफी ढीली होने लगीं। टोपी को बदलते रहने पर भी वह ढीली हो जाती थी।

चंदा ने टोपी विशेषज्ञ बादल मास्टर से सलाह ली। तो उन्होंने समझाया कि चंदा तुम्हारे सिर का आकार पंद्रह दिन बढ़ता है और पंद्रह दिन घटता है। पूर्णिमा को तुम्हारे सिर का आकार सबसे बड़ा और अमावस्या को सबसे छोटा होता है। इसलिए तुम दुकान से पंद्रह दिनों में रोज़ एक टोपी खरीदना जिससे तुम्हारे पास अलग-अलग नाप की पंद्रह टोपी हो जाएंगी। इससे तुम्हें परेशानी नहीं होगी।

चंदा ने बादल मास्टर की सलाह का पालन किया और रोज़ एक नए नाप की टोपी पहनकर घूमने लगी। चंदा अब समझ गई कि सूरज के सिर का माप एक जैसा होने से उसे एक ही टोपी की ज़रूरत पड़ती है। भविष्य में चंदा को फिर कभी टोपियों को लेकर शिकायत नहीं हुई।

☐ योगेन्द्र पाण्डेय, बारहवीं, धरसींवा, रायपुर



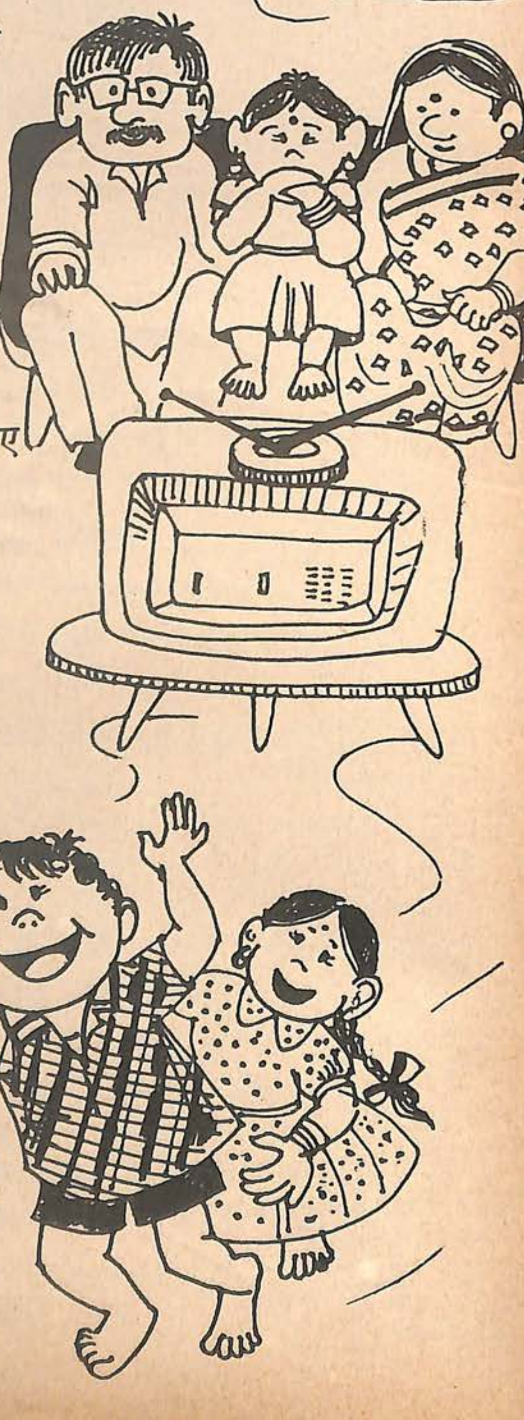


आज़ादी

कल ही शाम को शर्माजी ने
टोपी नई खरीदी
घर पर टीवी देख रहे हैं
पापा, मम्मी, दीदी।

लाल किले के आसपास है
आज़ादी का मेला
सबसे ऊपर नाच रहा है
झंडा एक अकेला।

कदम मिलाते, बैंड बजाते
फौजी आते जाते
पूरे लान में बच्चे-बूढ़े
चने मुरमुरे खाते।



सब ही कहते आज के दिन
आज़ाद हुआ था देश
आज के दिन ही अंग्रेज़ों का
राज हुआ था शेष।

अपनी तो कुछ समझ न आए
आज़ादी और देश
हम तो छत से देख रहे हैं
पतंग-पतंग के पेच।

हम से कोई पूछे : ''भैया
आज़ादी क्या होती है?''
हम कह देंगे, ''उस दिन सबकी
पूरी छुट्टी होती है।''

□ सफ़दर हाशमी

चित्र : विवेक



अंधेरे से उजाले की ओर



यह एक ऐसी लड़की की कहानी है जिसकी आंखें बचपन में एक बीमारी की वजह से खराब हो गई थीं।

इस लड़की का नाम था—एनी सुलीवान। उसकी पढ़ाई-लिखाई अपने जैसे अंधे बच्चों के एक स्कूल में हुई थी। इस स्कूल का नाम परकिंस स्कूल था। जब उसे तथा उसके साथियों को पढ़ाई पूरी करने पर उपाधियां दी जाने वाली थीं, तो एनी को इस अवसर पर बोलने के लिए प्रमुख वक्ता चुना गया।

समारोह में उसके भाषण की सबने सराहना की। समारोह के बाद जब वह अपने कमरे में आई और अकेली बैठी तो उसे अपनी पिछली ज़िंदगी याद आने लगी।

एक समय था जब वह बहुत ही गरीब लड़की थी। आंखें न होने से कुछ भी नहीं देख सकती थी। उसके पास न तो अपना घर था और न माता-पिता। जब उसने परकिंस स्कूल में प्रवेश लिया तब वह एकदम अपढ़ लड़की थी। यहां तक कि उसे अपने नाम के हिज्जे भी नहीं आते थे। परकिंस में आने के बाद बहुत अधिक प्रसन्न रहने लगी। जब वह सोलह वर्ष की थी तो उसकी आंखों का ऑपरेशन हुआ। पर आंखें पूरी तरह ठीक नहीं हुईं। वह स्कूल में ही रहकर वहां के छोटे बच्चों को पढ़ाने का काम करने लगी।

गर्मियों की छुट्टियों में वह एक अन्य अध्यापिका के साथ ब्रूस्टर चली गई।

ब्रूस्टर में रहते हुए उसे एक दिन एक पत्र मिला जिसमें पूछा गया था कि क्या वह एक अंधी, बहरी एवं गूंगी लड़की की शिक्षिका बनना पसंद करेगी! यह लड़की टस्कंबिया में रहती थी और उसका नाम था—हेलेन केलर। एनी ने सहर्ष यह प्रस्ताव मान लिया। परकिंस स्कूल के छोटे-छोटे बच्चों ने अपने बचत बैंक की ओर से हेलन केलर के लिए एक गुड़िया खरीद कर दी।

टस्कंबिया जाते हुए वह हेलेन केलर के बारे में सोचती रही। जब वह हेलेन के घर पहुंची तो वह दरवाज़े से सटकर खड़ी थी। दूर से देखने पर ही पता चल जाता था कि वह अंधी है। एनी ने अपना पैर सीढ़ी पर रखा, सीढ़ी के हिलते ही हेलेन उसकी ओर दौड़ पड़ी। एनी ने अनुमान लगाया कि बच्ची बहुत संवेदनशील और समझदार है।

हेलेन कुछ शैतान भी थी। जब बच्चों द्वारा दी गई गुड़िया उसके हाथ लगी, तब एनी ने उसके बारे में जानना चाहा। एनी ने उसके हाथ पर अपनी उंगली से 'डी-ओ-एल-एल' अक्षर बनाए। हेलेन समझ गई और उसने स्वीकृति की मुद्रा में अपना सिर हिलाया।



इसी प्रकार एनी ने उसे कई शब्द सिखा दिए।

हेलेन पहले साधारण बच्चों की तरह ही थी। जब वह बीस महीने की हुई तो एक बीमारी की वजह से उसकी देखने, बोलने और सुनने की क्षमता जाती रही। जब कोई बातें करता तब हेलेन उसके हिलते हुए होंठों पर अपनी उंगलियां रखकर वैसे ही बोलने का प्रयास करती थी।

हेलेन धीरे-धीरे यह जान गई थी कि हर वस्तु का एक नाम होता है और वह जो कुछ जानना चाहती है उसकी भी एक कुंजी वर्णमाला है।

एनी ने हेलेन को उसके घर के सभी सदस्यों के नाम बताए। जब दूसरे दिन सभी लोग खाना खाने मेज़ पर बैठे तो हेलेन ने प्रत्येक को छूकर उसका नाम उंगली की सहायता से टेबिल पर लिखकर बताया। घर के सभी सदस्य यह जानकर बहुत प्रसन्न हुए कि हेलेन ने उन सबके नाम सही-सही बता दिए।

एनी ने उभरे हुए अक्षरों वाली पुस्तकों से वर्णमाला पढ़ानी शुरू की। हेलेन ने कुछ ही दिनों में पूरी वर्णमाला



सीख ली। दूसरी रात वह सोते समय पुस्तक साथ लेकर सोई, सुबह उठकर उसने एनी को बताया, ''किताब डर गई, बहुत रोई। लड़की डरी नहीं, किताब लड़की के साथ सोई।''

एनी ने एक चूहा पकड़ा और उसे पिंजरे में बंद कर दिया। फिर एनी ने उसका हाथ उस पिंजरे पर रखवाया और उसके हाथ पर लिखा, ''पिंजरे के अंदर एक चूहा है।'' और हेलेन समझ गई। फिर एनी ने उसके लिए कुछ उभरे हुए शब्दों को एक बड़े मोटे कागज़ पर लिखकर काट लिया। फिर उन्हें उन वस्तुओं पर चिपका दिया जिनके वे नाम थे।

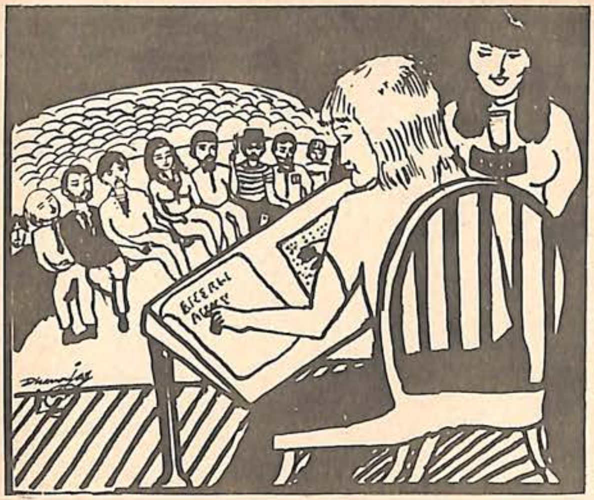
एनी ने हेलेन को चौकोर अक्षर सिखाए जिससे वह अपनी बातें दूसरों को समझा सके। उसने उसे टीचर जैसे शब्द लिखने सिखाए। चार खाने वाले सात सौ अक्षर उसने झटपट सीख लिए। हेलेन घंटों मेज़ पर बैठी-बैठी अक्षरों की पहचान करती रहती। एक दिन ऐसा भी आया जब हेलेन अन्ना नामक अपनी सहेली को पहली चिट्ठी लिख रही थी।

धीरे-धीरे हेलेन रंगों में रुचि लेने लगी। एनी ने हेलेन को ब्रेललिपि सिखाना आरंभ किया। उंगली, चारखानों वाले अक्षर, उभरे हुए अक्षर और ब्रेल। इन सबमें ब्रेल सबसे कठिन थी। जब हेलेन ने ब्रेल सीखी तब वह केवल सात वर्ष की थी।

परकिंस की 1887 की वार्षिक रिपोर्ट में हेलेन के शिक्षण पर एक लेख छापा। बाद में हर अखबार ने इसे प्रकाशित किया। इसके बाद तो हेलेन से संबंधित खबरें अखबारों में नियमित रूप से छपने लगीं।

एनी के स्कूल प्रमुख एक दिन केलर परिवार में आए और उन्होंने एनी और हेलन को परकिंस आने का निमंत्रण दिया।

जब ये लोग परकिंस पहुंचे तो वहां के स्कूल में पढ़ाई समाप्त कर चुकीं छात्राओं को उपाधियां प्रदान करने की तैयारियां चल रही थीं। सभी लोग हेलेन के



बारे में जानना चाहते थे। उनके मन में तरह-तरह के सवाल उमड़ रहे थे। इन सब बातों को ध्यान में रखकर स्कूल प्रमुख ने हेलेन. केलर को ही प्रमुख वक्ता चुना। हेलेन ने बाएं हाथ से उभरे हुए अक्षरों को महसूस किया और दाएं हाथ की उंगलियों से उन्हें पढ़ा। एनी वहां जमा लोगों को हेलेन की उंगलियों की वर्णमाला का अर्थ समझाती जा रही थी।

हेलेन ने एक अन्य टीचर मिस साराफुलर से होंठों की सहायता से बोलना सीखा। एक नन्हे बच्चे को जो कि अंधा था, हेलेन ने पैसा एकत्र करके परकिंस स्कूल में भर्ती करवाया। उसकी देखभाल का कार्य एनी और हेलेन ने संभाला। बाद में हेलेन ने न्यूयार्क के "राईट मेनसन स्कूल फॉर द डैफ" में दो साल रहकर अपने स्वर को नियंत्रित करना और आवाज़ में उतार-चढ़ाव व आवाज़ को साफ बनाना सीखा।

न्यूयार्क की एक महिला मिसेज हटन ने इतना धन इकट्ठा किया कि एनी और हेलेन साथ रह सकें। इस मदद से हेलेन ने कॉलेज की पढ़ाई पूरी की।

एक दिन विलियम अलेक्ज़ेंडर नामक एक व्यक्ति ने हेलेन से अपनी कहानी लिखने को कहा। हेलेन की मदद के लिए एक व्यक्ति जॉनमैसी को रखा गया।



कहानी पूरी होने पर उसमें कुछ और बातें जोड़कर उसे एक पुस्तक के रूप में प्रकाशित किया गया। इस पुस्तक ने हेलेन को एक लेखिका के रूप में ख्याति दिलाई। धीरे-धीरे हेलेन एक वक्ता के रूप में भी उभरने लगी थी।

इस बीच जॉनमैसी ने एनी से विवाह कर लिया था। कुछ दिनों बाद एनी अचानक बीमार पड़ गई और उसकी मृत्यु हो गई। एनी की मृत्यु के बाद हेलेन ने उस पर एक किताब लिखी जो 'टीचर' नाम से प्रकाशित हुई।

परकिंस के प्रेसीडेंट डॉ. ऑगस्टस थार्नहाइव ने परकिंस में एक नई इमारत बनवाई, जिसका उद्घाटन हेलेन के हाथों हुआ। इमारत का नाम था—द केलर-मैसी हाउस। यह था बहरे, अंधे लड़के-लड़कियों को पढ़ाने के लिए और शिक्षकों को प्रशिक्षण देने के लिए बनाया गया संस्थान।

हेलेन केलर को महसूस हुआ कि एक शिक्षक के नाते जो सम्मान उसे आज मिला है उससे बढ़कर सम्मान इस संसार में नहीं हो सकता।

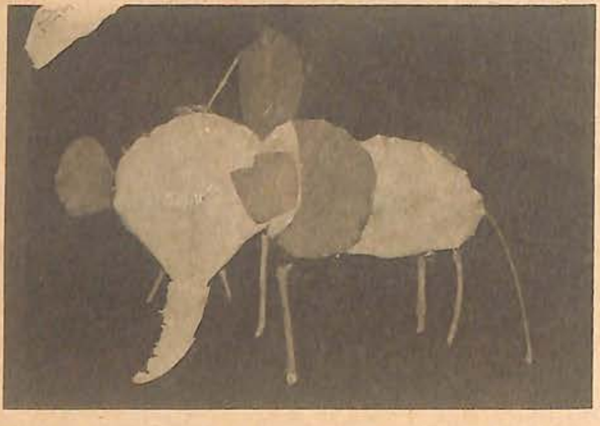
प्रस्तुति : निरंजन जानोरिया, ग्यारहवीं, हरदा
सभी चित्र : धनंजय खिरवड़कर, हरदा

वे विकलांग नहीं हैं...!

यह दुर्भाग्य है कि समाज ने शारीरिक अपंगता को सभी तरह की अक्षमता मान कर आज विकलांग जनों को केवल सहानुभूति का पात्र बना दिया है। जबकि तथ्य मौजूद है कि ऐसे लोगों ने इस मान्यता को झुठलाते हुए अनेक चुनौतियों पर विजय प्राप्त की।



चूहे को मिली हड्डी



पत्तियों से बना एक चित्र



एक था जंगल

उन तथ्यों की मौजूदगी में भी आज स्वस्थ बच्चों की अपेक्षा विकलांग बच्चों के लिए बहुत कम प्रेरणाएं उपलब्ध हैं। इसका कारण हमारी जड़ मानसिकता के अलावा कुछ भी नहीं। हम बहुत बार चाह कर भी इन बच्चों को स्वस्थ बच्चों की बराबरी का दर्ज़ा नहीं दे पाते। जबकि ये बच्चे भी उतने ही योग्य हैं। ज़रूरत केवल योग्य परिणामकारक संस्कारों एवं मार्गदर्शन देने वालों की है।

दक्षिण मध्य क्षेत्र सांस्कृतिक केन्द्र द्वारा संस्कृति विभाग भारत शासन के सहयोग से इन बच्चों की सृजनात्मक एवं कलात्मक अभिव्यक्ति की क्षमताओं को समाज के सामने लाने और इन बच्चों को आवश्यक मार्गदर्शन देने के उद्देश्य से देश के चार राज्यों में इस प्रकार के शिविर लगाए गए हैं।

इस शिविर के दौरान बहुत कुछ ऐसे तथ्य सामने आए हैं, जो हमारी सोच और मान्यताओं को अलग बैठा देते हैं। मानसिक या शारीरिक विकृति मनुष्य को विकलांग की श्रेणी में ले आती है। यह संज्ञा मिलते ही व्यक्ति के जीवन में आत्महीनता, असमर्थता और असमता की भावनाए घर करने लगती हैं। किन्तु मानवीय दृष्टिकोण से क्या ऐसे लोगों को सम्मानित रूप से अपनी समस्त क्षमताओं के साथ भरपूर जीवन जीने का हक़ नहीं है?

शिविर के दौरान सृजनात्मक क्षेत्र, नाटक, संगीत, नृत्य, चित्रकला, शिल्प कला, साहित्य, क्राफ्ट आदि कला माध्यमों को लेकर विभिन्न वर्गों के विकलांग बच्चों के बीच कार्य करने के बाद हमारा विश्वास बना है कि कुछ अपवादों को छोड़ दिया जाए तो इन बच्चों में सृजनात्मक एवं कलात्मक दृष्टि सामान्य की अपेक्षा कई गुना अधिक तीव्रता से प्रकट हुई। शिविर में विभिन्न कला माध्यमों से बच्चों को परिचित कराने और उन्हें प्रेरणा तथा अवसर देने के पश्चात् जो परिणाम उभरे हैं वह आश्चर्यजनक हैं। स्पर्धा की दृष्टि से देखा जाए तो यह दावा है कि अभिनय, चित्रकला, शिल्प, संगीत और साहित्य के क्षेत्र में यह बच्चे सामान्य बच्चों की तुलना में बहुत... बहुत और बहुत आगे हैं।

□ **हफीज़ खान**
मुख्य निर्देशक, रंग शिविर



एक रंग शिविर, सबसे अलग

चलो, चलो, चलो...! उस दिन खूब हल्ला मचा—चलो, सब चलो—30 मई की शाम 7 बजे से इंदौर के लालबाग स्थित नेहरू केंद्र में विकलांग बच्चों का रंगशिविर अपने नाटक प्रस्तुत करने जा रहा था। हममें से कई लोगों ने शिविर के दौरान बच्चों को बड़ी मेहनत से तैयारियां करते देखा था—इसलिए हम सब में उस दिन बड़ा उत्साह था। आतुरता से हम लोग कार्यक्रम का इंतज़ार कर रहे थे।

इस शिविर का आयोजन दक्षिण मध्य क्षेत्र सांस्कृतिक केंद्र द्वारा संस्कृति विभाग, भारत शासन के सहयोग से किया गया था। 16 मई से शुरू हुए शिविर का आज अंतिम दिन था।

शिविर में विकलांग यानी मूक-बधिर, मंद बुद्धि, शारीरिक विकलांग और दृष्टिहीन बच्चों ने भाग लिया। ये बच्चे इंदौर के चार संगठनों—मूक बधिर विद्यालय एवं अंधशाला; विकलांग कल्याण संघ, शासकीय मंदबुद्धि बाल पाठशाला एवं मूक बधिर संगठन के थे।

पंद्रह दिन के इस रंगशिविर में लगभग चालीस बच्चों ने भाग लिया। बच्चों को नाट्य प्रशिक्षण के साथ-साथ कला की अन्य विधाओं से भी परिचित कराया गया, जैसे चित्रकारी, औरोगेमी, बेकार चीज़ों से आकृतियां बनाना, कठपुतली आदि। विज्ञान के सरल और रोचक खेल भी बताए गए।

तो शाम को जब हम वहां पहुंचे तो पता चला कि कार्यक्रम खुली हवा में पेड़ों के नीचे एक अनोखे मंच पर था। इस मंच का नाम मेघदूत मुक्ताकाशी मंच रखा गया था। क्या तुम्हें मालूम है, मेघदूत का मालवा क्षेत्र से क्या संबंध है?

केंद्र के बिल्कुल सामने मैदान में चित्रकला और पोस्टर प्रदर्शनी थी। बच्चों ने रंगीन और सफेद कागज़ों पर तो चित्र बनाए ही थे, थर्मोकोल के टुकड़ों से अनोखी आकृतियां जैसे ऊंट, घोड़ा आदि बनाकर बढ़िया थीम की प्रस्तुतियां की थीं। शिविर में यह सब उन्होंने सीखा था। हमारे कई साथी, जो शिविर में नहीं आए थे, यकीन नहीं कर पा रहे थे कि ये तस्वीरें विकलांग बच्चों ने बनाई हैं। दरअसल हमेशा हमें बतलाया गया कि विकलांग होने का मतलब है शारीरिक और मानसिक रूप से असहाय और असमर्थ होना। इसलिए जब हमें पता चला कि यह बात हमेशा सच नहीं है, तो आश्चर्य तो होना ही था। चकमक के इस अंक के आवरण तथा पिछले आवरण पर प्रकाशित चित्र इस शिविर में ही बने हैं।

खैर, कार्यक्रम शुरू हुआ तो जैसा तुम जानते ही हो कुछ लोगों को पांच मिनट बोलने के लिए बुलाया जाता है और वे घंटों बोलते रहते हैं। खैर, हम लोगों को तो मालूम था कि इसके बाद क्या होने वाला है—इसलिए हम चुपचाप भाषण झेलते रहे।

फिर अचानक ही शुरू हुआ नाटक 'एक था जंगल'। ऐसे बच्चों ने,जिन्हें बिल्कुल सुनाई नहीं पड़ता, संगीत की लय और ताल के साथ कदम-कदम रखते हुए ऐसी भंगिमाओं से अभिनय किया कि देखते ही बनता था। इस नाटक में कुछ बच्चों ने अपने उठे हाथों की उंगलियां हिलाकर पेड़ और हिलती पत्तियों का अभिनय किया। एक मुसाफिर आकर जंगल में विश्राम करता है, फिर जिन पेड़ों ने उसे छाया दी, फल दिए, उन्हीं के साथी जानवरों को और खरगोश आदि (ये जानवर भी बच्चे ही बने थे) पकड़कर शहरों में बेचकर पैसे कमाता है। एक दिन जब सब जानवर खत्म हो गए तो वह पेड़ों को काटता है—फिर धीरे-धीरे पेड़ भी खत्म हो गए—फिर क्या था जंगल तो अब धीरे-धीरे बंजर ज़मीन बन गया। आखिर जंगल में रहनेवाले लोगों और उस पथिक को भी भूखों मरना पड़ा।

फिर हुआ नाटक 'चूहे को मिली हड्डी'। यह नाटक चकमक के जून-88 अंक में छप चुका है। तुम्हें याद है, इसकी कहानी क्या है?

ये तो थे लंबे नाटक जो कई बच्चों ने मिलकर तैयार किए। फिर दो-चार, छोटे-छोटे मूक अभिनय (जिसमें संगीत नहीं था) हुए। इनको बच्चों ने खुद तैयार किया था, बिना दूसरों के सहयोग से। दो बच्चे पालिश वाले बनकर सड़क पर बैठे हैं और कैसे-कैसे लोग उनसे जूते पालिश करवाने आते हैं, इस पर थे ये प्रहसन।

अंत में गीत-मंडली ने समूह-गीत गाए। हम भी उनके साथ गुनगुनाने लगे थे। मंडली में दो-तीन सदस्यों को आंखों से दिखता नहीं था—दो-एक शारीरिक रूप से विकलांग थे।

भई, उस दिन तो इतना मज़ा आया कि पूछो मत! और जिनको ज़रा भी शक था, कि विकलांग बच्चे कैसे नाच-गा सकते हैं, उनका भ्रम भी दूर हुआ। तुम भी हमें लिखना कि तुम्हारे विकलांग साथी क्या-क्या कर लेते हैं।

□ लाल्टू

सभी चित्र : कैरन



मान लो कि तुम बहरे हो...

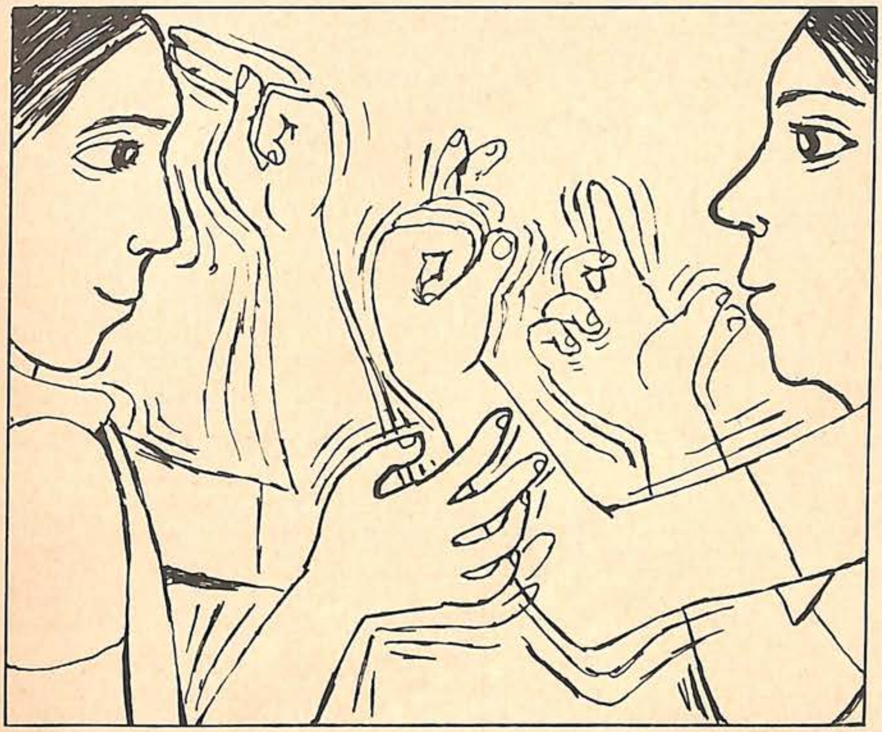


यह तो बहुत बुरा होगा.... बहरी हो जाने पर मैं कितने बढ़िया गीत सुन नहीं पाऊंगी!
...... सुबह पक्षी चहचहाएंगे तो मैं सुन नहीं पाऊंगी और मेरी नींद नही टूटेगी!
और सड़क पार करते हुए बड़े-बड़े ट्रकों तक के चलने की आवाज मैं सुन नहीं पाऊंगी तो किसी दिन. कुचली जाऊंगी!
वैसे शायद बहरा हो जाना इतना बुरा भी न हो, क्योंकि मास्साब की रूखी आवाज और डांट भी तो फिर मुझे सुनाई नहीं पड़ेगी!
हां, और सभी दादा लोगों को मैं जो मर्जी कह सकूंगी, क्योकि वे जवाब में कुछ भी कहें, मुझे तो सुनाई ही नहीं देगा
पर अगर तुम सुन न पाओ, तो बातें कैसे करोगी?
मान लो तुम कहना चाहती हो, 'बुद्धू' पर तुम कुछ सुन तो पातीं नहीं, अपनी आवाज तक नहीं- तो तुम्हें पता ही नहीं कि तुम्हारी आवाज ठीक निकल भी रही है या नहीं - तुम शायद गलती से बोल दोगी 'प्यारी मित्र'!
प्यारी मित्र!



पर मुझे मालूम तो है कि 'बुद्धू' कैसे कहते हैं!
हां, पर मान लो तुम जन्म से ही सुन न पाओ और तुम्हें मालूम ही नहीं कि दूसरे लोग 'बुद्धू' कैसे कहते हैं? तो तुम्हें कैसे पता चलेगा कि क्या कहें?
अरे भई! ऐसा है कि मैं बहरी तो नही हूं और मुझे किसी ने 'बुद्धू' कहा भी नहीं - मैं जब सचमुच बुद्धू नहीं हूं तो मुझे क्यों कोई बुद्धू कहे? और अगर मैं बहरी होती भी तो मैं अंधी तो नहीं हूं? मैं पढ़ सकती हूं. तो मैं जो कुछ कहना चाहूं, कह भी लूंगी! आखिर बहरे होने का मतलब यह थोड़े ही है कि मेरा गला भी खराब हो!
हां... तुम देख भी सको... पढ़ भी सको... और तुम्हारे गले की कोई समस्या न भी हो... फिर भी, शब्दों की ध्वनि के बारे में तुम्हें कैसे पता चलेगा? और जब तुम्हें मालूम ही नहीं कि आवाजें कैसी होती हैं, तो तुम बातें कैसे कर पाओगी?
जैसे, मानलो तुमने कभी रूसी भाषा में किसी को बोलते सुना न हो और तुम कोशिश कर रही हो कि रूसी भाषा बोलो; जैसे यह पढ़कर बोलने की कोशिश करो: 'ИЗБРАННЫЕ ПРОИЗВЕДЕНИЯ'
पर मान लो तुम्हारे पास दो रुपए हैं और तुम होटल गईं लड्डू लाने और तुम्हारे पास चाक या पेंसिल या पेन नहीं है. कैसे मिलेंगे लड्डू तुम्हें?
मैं हलवाई को कहूंगी कि मुझे अपनी पेन दे दे.
पर कैसे कहोगी उससे? तुम क्या कहती हो तुम खुद नहीं सुन पातीं और जो तुम सुन नहीं पातीं उसे कह नहीं पातीं! मान लो किसी के पास कोई चाक या पेंसिल या पेन या ऐसा कुछ भी नहीं हो, तो?
अरे छोड़ो यार! तुम तो बड़ी बेवकूफ हो! अगर पैसे पास हों, तो लड्डू पाने में क्या देर?! मैं पैसा दिखाकर लड्डुओं की ओर हाथ दिखाऊंगी और इसके पहले कि तुम 'हिजि बिजि बिज' भी कह पाओ मुझे लड्डू मिल भी जाएंगे और मैं उन्हें खा भी लूंगी.

मुंह से बोलने और लिखने के अलावा अपनी बात समझाने के कई और तरीके भी हैं.....



हम हाथों और उंगलियों से भी संकेत कर सकते हैं.

चेहरे पर भाव लाकर भी बहुत कुछ कह सकते हैं

हम कूद सकते हैं
नाच सकते हैं.





अपनी आँखों से भी बहुत कुछ कह सकते हैं. जैसे : एक आँख दबाकर या पलकें झपकाकर।

इतना ही नहीं बिना कुछ कहे एक लंबा नाटक भी किया जा सकता है..!

चित्र, शब्द एवं सज्जा : कैरन,



गिरगिट का सपना

एक गिरगिट था। अच्छा, मोटा-ताज़ा। काफी हरे जंगल में रहता था। रहने के लिए एक घने पेड़ के नीचे अच्छी-सी जगह बना रखी थी उसने। खाने-पीने की कोई तकलीफ नहीं थी। आस-पास जीव-जन्तु बहुत मिल जाते थे। फिर भी वह उदास रहता था। उसका खयाल था कि उसे गिरगिट की जगह कुछ और होना चाहिए था। और हर चीज़, हर जीव का अपना एक रंग था। पर उसका अपना कोई एक रंग था ही नहीं। थोड़ी देर पहले नीले थे, अब हरे हो गए। हरे से बैंजनी। बैंजनी से कत्थई। कत्थई से स्याह। यह भी कोई ज़िंदगी थी? यह ठीक था कि इससे बचाव बहुत होता था। हर देखने वाले को धोखां दिया जा सकता था। खतरे के वक्त जान बचाई जा सकती थी। शिकार की सुविधा भी इसी से थी। पर यह भी क्या कि अपनी कोई एक पहचान ही नहीं! सुबह उठे, तो कच्चे भुट्टे की तरह पीले और रात को सोए तो भुने शकरकंद की तरह काले! हर दो घंटे में खुद अपने ही लिए अजनबी!

उसे अपने सिवा हर एक से ईर्ष्या होती थी। पास के बिल में एक सांप था।

एक बढ़िया लहरिया था उसकी खाल पर कि देखकर मज़ा आ जाता था। फिर भी आसपास के सब चूहे-चिमगादड़ उससे खौफ खाते थे। वह खुद भी उसे देखते ही दुम दबाकर भागता था। या मिट्टी के रंग में मिट्टी होकर पड़े रहता था। उसका ज़्यादातर मन यही करता था कि वह गिरगिट न होकर सांप होता, तो कितना अच्छा था! जब मन आया, पेट के बल रेंग लिए। जब मन आया, कुंडली मारी और फन उठाकर सीधे हो गए।

एक रात सोया, तो उसे ठीक से नींद नहीं आई। दो-चार कीड़े ज़्यादा निगल लेने से बदहज़मी हो गई थी। नींद लाने के लिए वह कई तरह से सीधा-उलटा हुआ, पर नींद नहीं आई। आंखों को धोखा देने के लिए उसने रंग भी कई बदल लिए, पर कोई फायदा नहीं हुआ। हलकी-सी ऊंघ आती, पर फिर वही बेचैनी। आखिर वह पास की झाड़ी में जाकर नींद लाने की एक पत्ती निगल आया। उस पत्ती की सिफारिश उसके एक और गिरगिट दोस्त ने की थी। पत्ती खाने की देर थी कि उसका सिर भारी होने लगा। लगने लगा कि उसका शरीर ज़मीन के अंदर-अंदर धंसता जा रहा है। थोड़ी देर में उसे महसूस हुआ जैसे किसी ने उसे ज़िंदा ज़मीन में गाड़ दिया हो। वह बहुत घबराया। यह उसने क्या किया कि दूसरे गिरगिट के कहने में आकर खामखाह वह पत्ती खा ली। अब अगर वह ज़िंदगी-भर ज़मीन के अंदर ही दफन रहा तो?

वह अपने को झटककर बाहर निकलने के लिए ज़ोर लगाने लगा। पहले तो उसे कामयाबी हासिल नहीं हुई। पर फिर लगा कि ऊपर की ज़मीन पोली हो गई है और वह बाहर निकल आया है। ज्यों ही उसका सिर बाहर निकला और बाहर की हवा अंदर गई, उसने एक और



ही अजूबा देखा। उसका सिर गिरगिट के सिर जैसा न होकर सांप के सिर जैसा था। वह पूरा ज़मीन से बाहर आ गया, पर सांप की तरह बल खाकर चलता हुआ। अपने शरीर पर नज़र डाली, तो वही लहरिया नज़र आया जो उस पास वाले सांप के बदन पर था। उसने कुंडली मारने की कोशिश की, तो कुंडली लग गई। फन उठाना चाहा, तो फन उठ गया। वह हैरान भी हुआ और खुश भी। उसकी कामना पूरी हो गई थी। वह सांप बन गया था।

सांप बने हुए उसने आसपास के माहौल को देखा। सब चूहे-चिमगादड़ उससे खौफ खाए हुए थे। यहां तक कि सामने के पेड़ का गिरगिट भी डर के मारे जल्दी-जल्दी रंग बदल रहा था। वह रेंगता हुआ उस इलाके से दूसरे इलाके की तरफ बढ़ गया। नीचे से जो पत्थर-कांटे चुभे, उनकी उसने परवाह नहीं की। नया-नया सांप बना था, सो इन सब चीज़ों को नज़र-अंदाज़ किया जा सकता था। पर थोड़ी दूर जाते-जाते सामने से एक नेवला उसे दबोचने के लिए लपका, तो उसने सतर्क होकर फन उठा लिया।

उस नेवले की शायद पड़ोस के सांप से पुरानी लड़ाई थी। सांप बने गिरगिट का मन हुआ कि वह जल्दी से रंग बदल ले, पर अब रंग कैसे बदल सकता था? अपनी लहरिया खाल की सारी खूबसूरती उस वक्त उसे एक शिकंजे की तरह लगी। नेवला फुदकता हुआ बहुत पास आ गया था। उसकी आंखें एक चुनौती के साथ चमक रही थीं। गिरगिट आखिर था तो गिरगिट ही। वह सामना करने की जगह एक पेड़ के पीछे जा छिपा। उसकी आंखों में नेवले का रंग और आकार बसा था। कितना अच्छा होता अगर वह सांप न बनकर नेवला बन गया होता! तब सांप भी उससे डर कर भागता।

तभी उसका सिर फिर भारी होने लगा। नींद की पत्ती अपना रंग दिखा रही थी। थोड़ी



देर में उसने पाया कि जिस्म में हवा भर जाने से वह काफी फूल गया है। ऊपर तो गरदन निकल आई है और पीछे को झबरैली पूंछ। जब वह अपने को झटककर आगे बढ़ा, तो लहरिया सांप एक नेवले में बदल चुका था।

उसने आसपास नज़र दौड़ाना शुरू किया कि अब कोई सांप नज़र आए, तो उसे वह लपक ले। पर सांप वहां कोई था ही नहीं। कोई सांप निकलकर आए, इसके लिए उसने ऐसे ही उछलना-कूदना शुरू किया। कभी झाड़ियों में जाता, कभी बाहर आता। कभी सिर से ज़मीन को खोदने की कोशिश करता। एक बार जो वह ज़ोर से उछला तो पेड़ की टहनी पर टंग गया। टहनी का कांटा ऐसे जिस्म में गड़ गया कि न अब उछलते बने, न नीचे आते। आखिर जब बहुत परेशान हो गया, तो वह मनाने लगा कि क्यों उसने नेवला बनना चाहा। इससे तो अच्छा था कि पेड़ की टहनी बन गया होता। तब न रेंगने की ज़रूरत पड़ती, न उछलने-कूदने की। बस अपनी जगह उगे हैं और आराम से हवा में हिल रहे हैं!

नींद का एक और झोंका आया और उसने पाया कि सचमुच अब यह नेवला नहीं रहा, पेड़ की टहनी बन गया है। उसका मन मस्ती से भर गया। नीचे की ज़मीन से अब उसे कोई वास्ता नहीं था। वह ज़िंदगी भर ऊपर-ही-ऊपर झूलता रह सकता था। उसे यह भी लगा जैसे उसके अंदर से कुछ पत्तियां फूटने वाली हों। उसने सोचा कि अगर उसमें फूल भी निकलेगा, तो उसका क्या रंग होगा? और क्या वह अपनी मर्जी से फूल का रंग बदल सकेगा?

पर तभी दो-तीन कौवे उस पर आ बैठे। एक ने उस पर बींठ कर दी, दूसरे ने उसे चोंच से कुरेदना शुरू किया। उसे बहुत तकलीफ हुई। यह अच्छा था कि कौवे उससे अपनी मनमानी किए जा रहे हैं और वह जवाब में कुछ कर ही नहीं सकता! उसे फिर अपनी गलती के लिए पश्चाताप हुआ। अगर वह टहनी की जगह कौवा बना होता, तो कितना अच्छा था! जब चाहो, जिस टहनी पर जा बैठो, और जब चाहो, हवा में उड़ान भरने लगो!

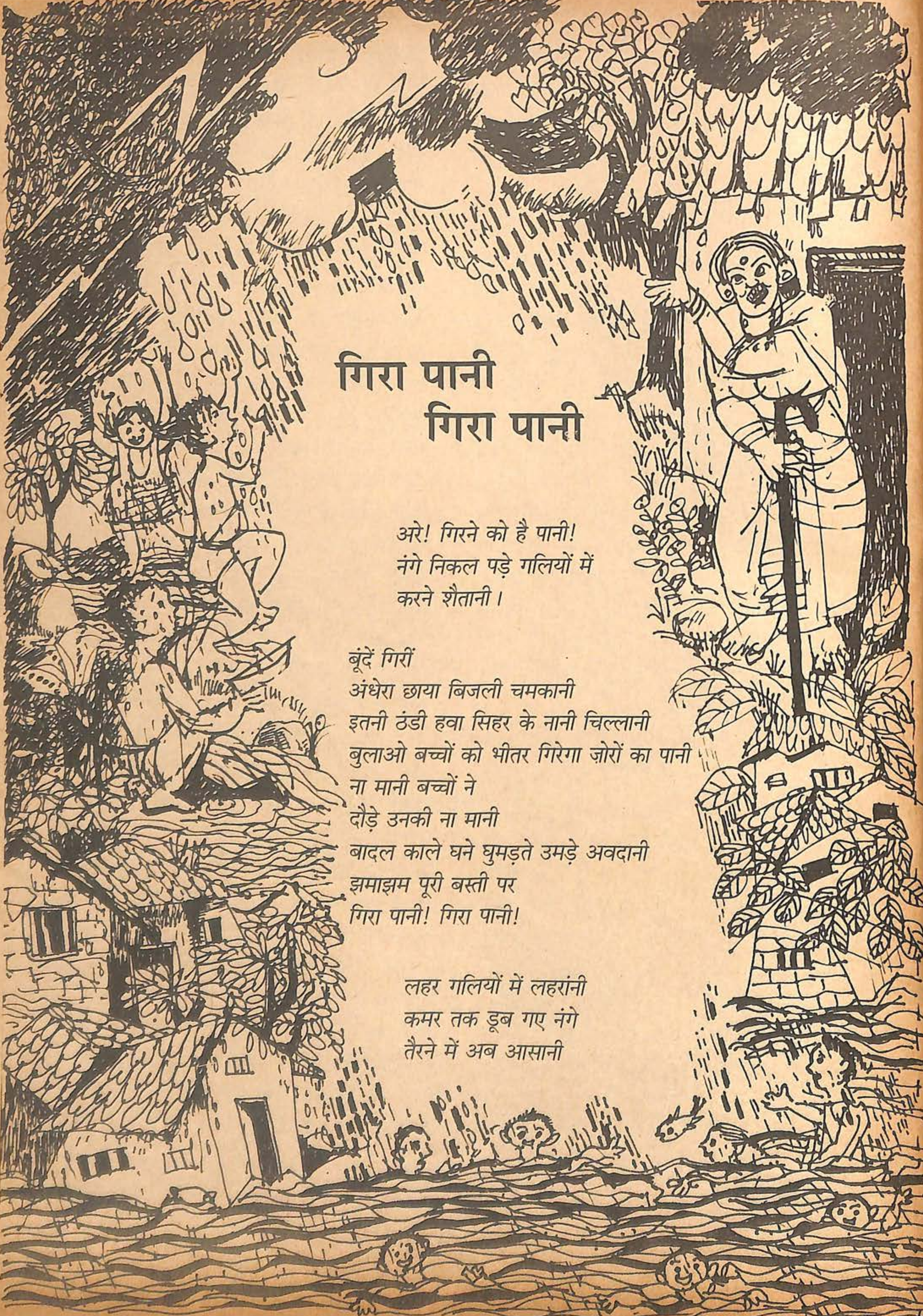
वह अभी सोच ही रहा था कि कौवे उड़ खड़े हुए। पर उसने हैरान होकर देखा कि कौवों के साथ वह भी उसी तरह उड़ खड़ा हुआ है। अब ज़मीन के साथ आसमान भी उसके नीचे था। और वह ऊपर-ऊपर उड़ा जा रहा था। उसके पंख बहुत चमकीले थे। जब चाहो उन्हें झपकाने लगो, जब चाहो सीधे कर लो। उसने आसमान में कई चक्कर लगाए और खूब कांय-कांय की। पर तभी नज़र पड़ी, नीचे कुछ लड़कों पर जो गुलेल हाथ में लिए उसका निशाना बना रहे थे। पास उड़ता हुआ एक कौवा निशाना बनकर नीचे गिर चुका था। उसने डरकर आंखें मूंद लीं। मन-ही-मन सोचा कि कितना अच्छा होता अगर वह कौवा न बनकर गिरगिट ही बना रहता! तब आसमान के रंग में अपना रंग मिला लेता और इस तरह अपनी जान न गंवानी पड़ती।

पर काफी देर बाद भी गुलेल का पत्थर उसे नहीं लगा, तो उसने आंखें खोल लीं। वह अपनी उसी जगह पर था जहां सोया था। पंख-वंख गायब हो गए थे और यह वही गिरगिट का गिरगिट था। वही चूहे-चिमगादड़ आसपास मंडरा रहे थे और सांप अपने बिल से बाहर आ रहा था। उसने जल्दी से रंग बदला और दौड़कर उस गिरगिट की तलाश में हो लिया जिसने उसे नींद की पत्ती खाने की, सलाह दी थी। मन में शुक्र भी मनाया कि अच्छा है वह गिरगिट की जगह और कुछ नहीं हुआ, वरना कैसे उस गलत सलाह देने वाले गिरगिट को गिरगिटी भाषा में मज़ा चखा पाता!

☐ मोहन राकेश

('बिना हाड़ मांस के आदमी' से साभार)

सभी चित्र : नर्मदा प्रसाद

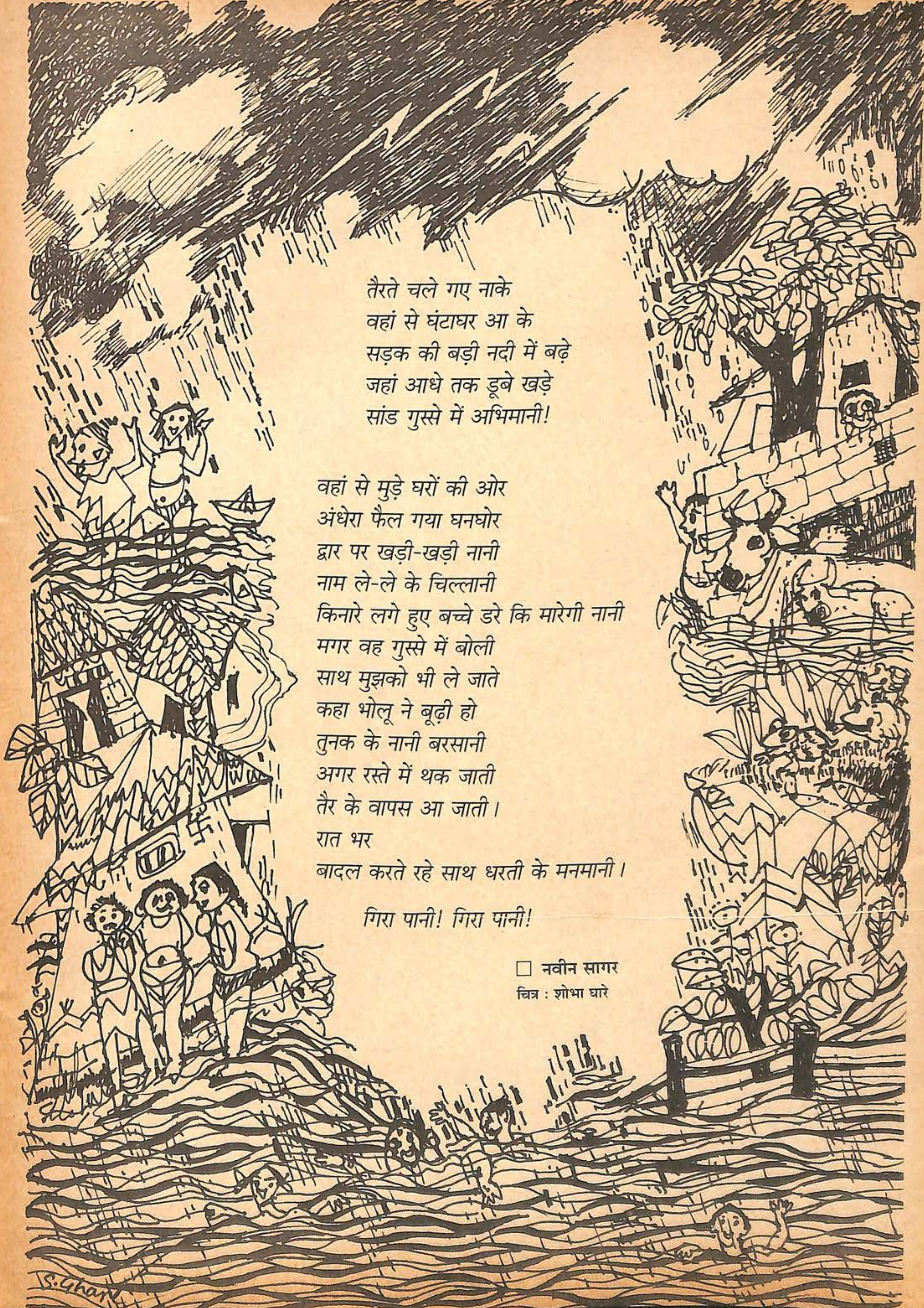


गिरा पानी
गिरा पानी

अरे! गिरने को है पानी!
नंगे निकल पड़े गलियों में
करने शैतानी।

बूंदें गिरीं
अंधेरा छाया बिजली चमकानी
इतनी ठंडी हवा सिहर के नानी चिल्लानी
बुलाओ बच्चों को भीतर गिरेगा ज़ोरों का पानी
ना मानी बच्चों ने
दौड़े उनकी ना मानी
बादल काले घने घुमड़ते उमड़े अवदानी
झमाझम पूरी बस्ती पर
गिरा पानी! गिरा पानी!

लहर गलियों में लहरांनी
कमर तक डूब गए नंगे
तैरने में अब आसानी



तैरते चले गए नाके
वहां से घंटाघर आ के
सड़क की बड़ी नदी में बढ़े
जहां आधे तक डूबे खड़े
सांड गुस्से में अभिमानी!

वहां से मुड़े घरों की ओर
अंधेरा फैल गया घनघोर
द्वार पर खड़ी-खड़ी नानी
नाम ले-ले के चिल्लानी
किनारे लगे हुए बच्चे डरे कि मारेगी नानी
मगर वह गुस्से में बोली
साथ मुझको भी ले जाते
कहा भोलू ने बूढ़ी हो
तुनक के नानी बरसानी
अगर रस्ते में थक जाती
तैर के वापस आ जाती।
रात भर
बादल करते रहे साथ धरती के मनमानी।

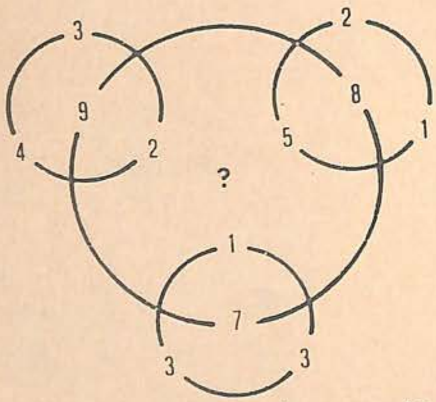
गिरा पानी! गिरा पानी!

□ नवीन सागर

चित्र : शोभा घारे



(1)



प्रश्नचिह्न की जगह क्या संख्या आएगी?

(2)

पानी में भींगकर फूले हुए एक कटोरी चने, एक कटोरी सूखे चने से ज़्यादा भारी होंगे या कम?

(3)



गुब्बारों के इस झुंड में तीन गुब्बारे ऐसे हैं जिनकी हूबहू डिजायन का एक और साथी भी है। ढूंढो तो भला!

(4)

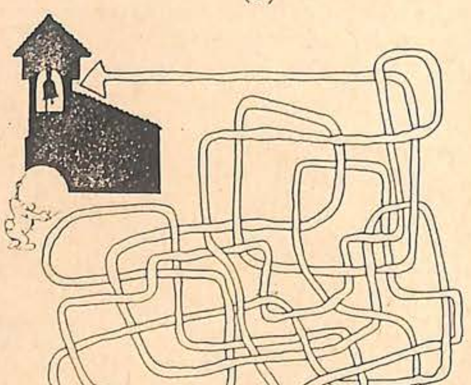
चंदू को पिक्चर देखने जाना था। बड़े भाई साहब से इजाज़त लेना टेढ़ी खीर थी। फिर भी उसने हिम्मत करके पूछा। बड़े भाई साहब ने दो पर्चियां बनाईं और चंदू को कहा, एक पर्ची पर लिखा है, जाओ! और दूसरी पर लिखा है, मत जाओ! तुम्हें एक पर्ची उठानी है। पर्ची पर जो लिखा होगा वहीं तुम्हें करना पड़ेगा।

चंदू को मालूम था कि दोनों पर्चियों पर "मत जाओ" ही लिखा होगा। उसने पिक्चर जाने के लिए भला क्या तरीका अपनाया होगा!

(5)

पांच ऐसे पशुओं के नाम बताओ जो घरों में पाई जाने वाली बिल्ली की जाति के हों।

(6)



चमगादड़ मंदिर तक पहुंचना चाहती है, रास्ता बताओ तो!

(7)

छह सहेलियां थीं। एक-दूसरे को उनके जन्मदिन पर उपहार देती थीं। मीना ने पाया कि उसके पास सबको उपहार देने के लिए पैसे नहीं हैं। इसलिए उसकी पांच सहेलियों ने जो उपहार उसे दिए थे उसने उन्हें बदल-बदलकर उन्हीं को दे दिया। ऐसा हुआ कि यदि नीमा का उपहार प्रेमा को मिला तो प्रेमा का कविता को। कृष्णा का उपहार उस लड़की को मिला जिसका उपहार वीणा को मिला था। कुंती का उपहार उस लड़की को मिला जिसका उपहार (पेन) कृष्णा को मिला था।

कुंती को किस लड़की का उपहार मिला होगा?

पहेलियां

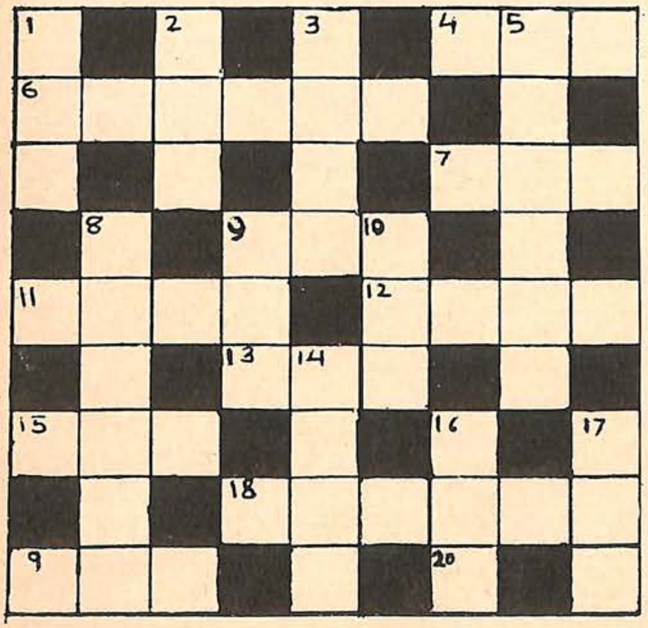
सोने की वह नहीं
सोने की है नार
खाती पीती कछु नहीं
बूझो बूझनहार

संध्या को पैदा हुई
आधी रात जवान
बड़े सवेरे मर गई
घर हो गया मसान

हर एक को मैं खाऊं
मुझे न कोई खाए
एक झलक भी जिसको देखूं
उसी के तन पर पाएं

☐ दीपा अग्रवाल, भोपाल

वर्ग पहेली - 23



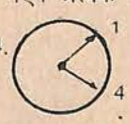
संकेत : बाएं से दाएं

4. मात्र (3)
6. श्रमिक (6)
7. आधा पायदान आधी लट के जेवर (3)
9. वासु नाना प्रकार में छुपी बात कहना (3)
11. चमचमाती दुनिया चाय का कप (4)
12. वय तथा, जैसे थे (4)
13. कशमकश में पानी की थैली (3)
15. उल्टे पास टमाटर का सिर हो जाए समतल (3)
18. अगर असली गड़बड़ हो, तो यह इंजीनियर (4, 2)
19. असमय भुखमरी (3)

संकेत : ऊपर से नीचे

1. जयपुर का किला (3)
2. चश्मा (3)
3. नाक हला, बोलने में दिक्कत (4)
5. जंगल का जीवन (3, 3)
8. म्यूनसिपाल्टी (6)
9. आसान, अच्छा दुख (3)
10. नाक में गाय की पूंछ का हीरो (3)
14. योग का एक प्रकार (4)
16. आधा शरबत थोड़ी दवाई ऋतु (3)
17. असली बम में छुपा ईसा को मारने का यंत्र (3)

माथापच्ची : उत्तर माह जुलाई के

1. नहीं
2. 28 तरबूज खरीदे गए। प्रत्येक का मूल्य 84 पैसे था।
4. 

6. 65 किलोमीटर
7. पौधा आठवें दिन ही बाड़ की ऊंचाई का हो जाएगा।
8. 110 संख्याएं

वर्ग पहेली हल : 22

बाएं से दाएं :

1. सरोपा 3. रोज़गार 6. रजाई 8. चालीस 9. सदाबहार 11. गणित 12. पहर 16. राजस्थान 18. वतन 19. बारात 20. नवोदय 21. नवीन

ऊपर से नीचे :

1. समाचार 2. पारसमणि 4. जनाब 5. रबर 7. ईसप 10. हाज़िर 11. गरज 13. हमवतन 14. कुनबा 15. अनबन 16. राशन 17. खेद



कांच की कहानी

कांच को जब भी देखता हूं हैरान सा रह जाता हूं। सोचो क्या कांच के अलावा कोई ऐसी चीज़ है जो एकदम पारदर्शी है, काफी सख्त होकर भी आसानी से टूट सकती है, जिस पर रसायनों का खास असर नहीं पड़ता है, वर्षों तक पानी में पड़े रहने पर भी वैसी की वैसी हालत में बनी रहती है। न गर्मी उसका कुछ बिगाड़ सकती है और न बिजली ही।

लेकिन इस सबके बावजूद कांच जरा हाथ से छूटा कि चूर-चूर हो गया। किसी भी आकस्मिक चोट या झटके को सह सकने की ताकत नहीं है उसमें।

ये सब तो ठीक है फिर भी लोहे तक को गला देने वाले रसायनों को हम निश्चिंतता से कांच के बर्तन में रख सकते हैं, ऐसा क्यों?

वास्तव में हर बार, जब भी कांच को देखता हूं उसके बारे में सोचता हूं।

उसमें कुछ न कुछ नया ज़रूर नज़र आता है।

और फिर अपने आप ही जेहन में अगला सवाल उभरता है कि क्या इसे खोदकर ज़मीन में से निकाला जाता है या फिर यह समुद्रों में पाया जाता है? क्या पौधों से तो नहीं मिलता होगा? फिर यह आता कहां से है? कहीं यह फैक्ट्री में तो नहीं बनता? जब स्कूल में थे तो लोहा, तांबा, चांदी, सोना आदि के बारे में तो बहुत कुछ पढ़ा था परंतु कांच का कहीं नामोनिशान ही नहीं था और यदि कहीं होगा भी तो इतना कम और इस तरह से कि आज याद ही नहीं है।

कभी मौका भी नहीं मिला था खोजबीन करने का। उस दिन देखा सवालीराम-चाचा बैठे-बैठे सिर खुजला रहे हैं और साथ-साथ कुछ पढ़कर मुस्कराते हुए सिर भी हिला रहे हैं। कुछ देर तो मैं खड़ा देखता रहा फिर रहा नहीं गया और पूछ बैठा, ''चचा, यह मुस्कराहट क्यों?''

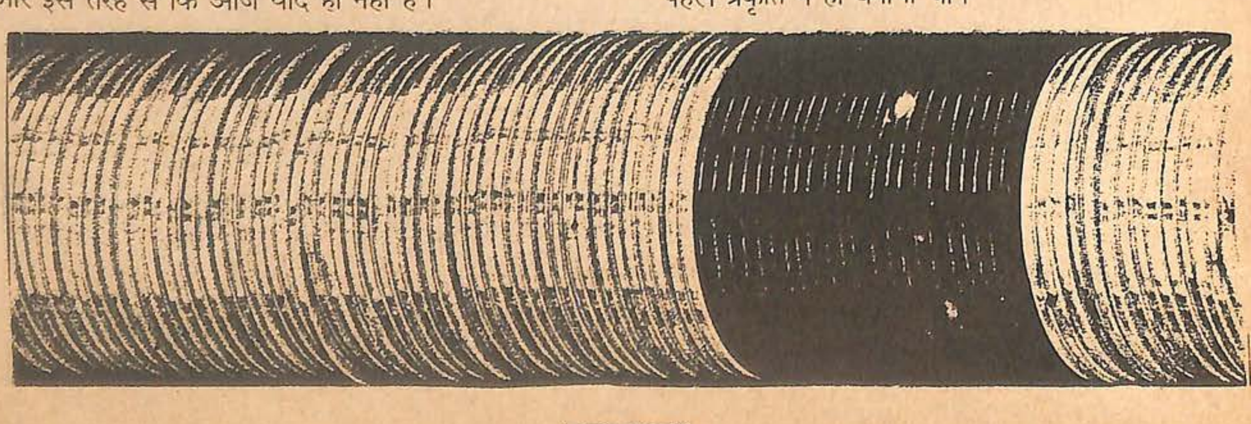
सवालीराम-चचा ने चश्मा उतारा और मेरी तरफ देखते हुए बोले, ''मालूम है कांच कैसे बनता है?''

मैंने नहीं में सिर हिलाया और बैठ गया उनके पास। मानोगे तुम, उन्होंने बताया कि रेत, चूना और सोडा मिलाकर गर्म करते हैं, इतना गर्म कि वे पिघल जाएं और फिर ठंडा करने से कांच बन जाता है।

विश्वास नहीं हुआ उस दिन और आज भी जब कभी सोचता हूं विश्वास नहीं होता!

रेत, चूना और सोडा मिलकर कांच बनाएंगे? .. हूं, क्या औकात है उनकी? चचा से पूछने की कोशिश की, ''कैसे?'' ''क्यों?'' सवालीराम-चचा की आदत तो तुम्हें मालूम है ही—ज़्यादा कुछ बताया नहीं और पकड़ा दीं चार-छः किताबें, ''पढ़ो इन्हें।''

जब कभी समय मिला 10-15 पन्ने उलट लेता। लंबे-चौड़े नाम और फार्मूले तो समझ में आए नहीं। पर और भी बहुत कुछ था उन किताबों में जो थोड़ा बहुत समझ में आ गया। पढ़ते-पढ़ते पता चला कि सबसे पहला कांच तो बहुत पहले प्रकृति ने ही बनाया था।



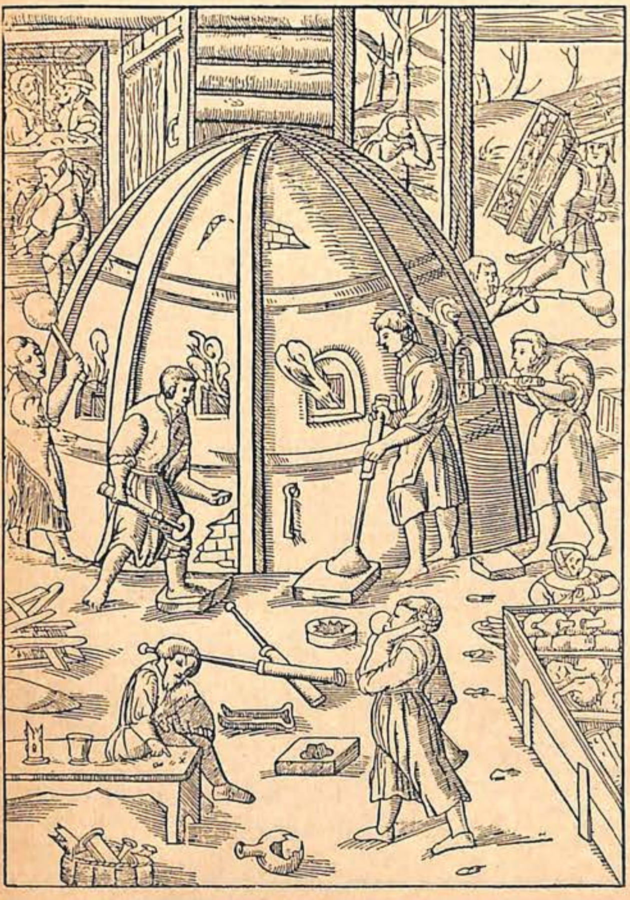
कहीं-कहीं वही पदार्थ जो रेत, चूना और सोडा में पाए जाते हैं संयोग से आपस में मिल गए। धरती की गर्मी की वजह से पिघल गए और फिर ठंडे होने से अस्पष्ट से मटमैले कांच की चट्टानों में बदल गए। आज भी कई जगह दुनिया में ऐसे कांच के पहाड़ और खदानें पाई जाती हैं।

हज़ारों साल पहले जब आदिमानव ने कुदरती कांच की चमकीली चट्टानें और टुकड़े देखे होंगे तो उसे ज़रूर हैरानी हुई होगी। तोड़ने की कोशिश की होगी तो अजीब तरह से टूटा होगा—छोटे-छोटे तीखे टुकड़ों में। यह सब उस समय की बात है जब मनुष्य ने लोहा तांबा, पीतल आदि धातुओं को धरती में पाए जाने वाले यौगिकों में से निकालना नहीं सीखा था। उस समय उसके सब औजार पत्थर, लकड़ी और हड्डियों से ही बने होते थे।

इसलिए जहां पर इस तरह का प्राकृतिक कांच पाया जाता था वहां उसने इन तेज़ धार वाले और नुकीले टुकड़ों का, काटने और खुरचने के औजार के लिए इस्तेमाल करना शुरू कर दिया। क्योंकि प्राकृतिक कांच हर जगह तो पाया नहीं जाता था इसलिए औजारों के लिए उसका उपयोग दुनिया के सिर्फ कुछ ही हिस्सों तक सीमित रहा।

आग का इस्तेमाल तो मनुष्य लाखों सालों से जानता





है। आज से पांच-छः हज़ार साल पहले कुछ गर्म करते हुए संयोग से रेत, सोडा और चूना भी गर्म होकर पिघल गए होंगे। उनके पिघलकर मिल जाने और ठंडे होने पर मनुष्य को एक अजीब सा चमकीला पदार्थ मिला होगा। फिर क्या था—आदमी ने यह जानने की कोशिश की होगी कि यह नया पदार्थ है क्या? क्या इसे फिर से बनाना संभव होगा? एक बार कौतूहल जग जाने के बाद तरह-तरह की कोशिशें हुई होंगी, उसे बनाने की—जिनसे कांच का बनना संभव हुआ और आदमी को कांच बनाने का तरीका समझ में आया। परंतु एक बार आदमी को कांच बनाने का तरीका आ गया तो उसके सामने तरह-तरह के सुंदर, रंग-बिरंगे आभूषण, खोखले बर्तन, तिलस्मी मुखौटे... इत्यादि का एक नया खज़ाना ही खुल गया।

उस समय कांच का जो भी आकार बनाना होता उसी आकार का गीली मिट्टी या रेत का एक ढांचा बना लेते। फिर उस ढांचे को बार-बार पिघले हुए कांच में डुबोते जिससे एक



के बाद एक कांच की पतली पर्तें चढ़ती जाएं। पर्त काफी मोटी हो जाने पर उसे ठंडा किया जाता और ठंडा हो जाने पर उसमें से मिट्टी/रेत निकाल लेते हैं जिससे कांच का मनचाहा आकार बन जाता।

इसके बाद शुरू होता इन्हें रंगने और चमकाने का काम—ज़्यादातर राजाओं, कबीले के सरदारों और कबीले के बुजुर्गों के लिए। उस समय कांच की विविध वस्तुएं बनाने का केंद्र था—उत्तरी अफ्रीका में आज का मिस्र देश।

फिर बाईस-तेईस सौ साल पहले साधारण सा दिखने वाला परन्तु एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण आविष्कार हुआ। किसी ने ढूंढ निकाला कि अगर लोहे की पोली नली के एक सिरे पर पिघले हुए कांच की लुगदी रखकर दूसरे सिरे से फूंका जाए तो कांच का एक गोला सा बन जाता है जिसे तेज़ी से घुमाकर, हाथों की मदद से या अन्य किसी तरीके से मनचाहे आकार में बदला जा सकता है।

इस कांच के गोले को खोखले सांचे में डालकर और फिर फूंक मारकर सांचे का आकार भी दिया जा सकता है। यह नया तरीका आसान था और इससे समय की भी काफी बचत होती थी। दाम भी कम हो जाने की वजह से अब कांच महलों से उतरकर आम जनता के साजो-सामान का एक हिस्सा बन गया।

उस समय बनाया जाने वाला अधिकतर कांच रेत, चूने और सोडे में मिली हुए अशुद्धियों की वजह से रंगीन होता था। रोम में शुरूआत हुई भार में हल्के और तकरीबन रंगहीन कांच की। और उसी के साथ कांच के इतिहास ने एक नया मोड़ लिया—उसके कलात्मक नमूने भी बनने लगे। इसके बाद, सैकड़ों वर्षों तक समय के साथ-साथ बेहतरीन कांच बनाने के केंद्र बदलते गए।





उन सब किताबों को पढ़कर एक और बहुत मज़ेदार बात समझ में आई। अच्छे कांच की सामग्री और कलात्मक नमूने ज़्यादातर उसी साम्राज्य में बनते जो उस वक्त ताकतवर या मज़बूत होता। और अच्छा कांच बनाने की इस कला को हीरे-जवाहरातों की तरह छुपा-छुपा कर रखा जाता। कांच बनाने की भट्टियां शहर से बाहर लगाई जातीं ताकि निपुण कारीगरों की पहरेदारी आसानी से की जा सके। यह विशेष ध्यान रखा जाता कि वे कहीं देश छोड़कर चले न जाएं। कभी-कभी तो उन्हें रोके रखने के लिए दंड का भी इस्तेमाल किया जाता। और जैसे-जैसे वह साम्राज्य गिरावट/पतन की ओर बढ़ता, यह कला भी खत्म होनी शुरू हो जाती।

कांच बनाने वाले कारीगर नए उभर रहे राज्यों में जाकर बस जाते या बसने पर मजबूर किए जाते। विजयी सम्राट सोना, चांदी, हीरे, मोती के साथ-साथ इन कारीगरों को भी अपने साथ ले जाते।

सदियों तक यही क्रम चलता रहा। फिर 15-16 वीं शताब्दी में वेनिस में एक करीब-करीब रंगहीन और पारदर्शी कांच बनाया गया। अभी तक हीरे-मोतियों की नकल करते हुए रंगीन, चमकीले कांच बनाने पर ज़ोर था। पर वेनिस में बनाए गए इस रंगहीन कांच को "क्रिस्टेलो" नाम दिया गया।

उसी अर्से के दौरान काफी हद तक "क्रिस्टेलो" कांच की वजह से दुनिया के विभिन्न भागों में विज्ञान से जुड़े कई नए आविष्कार हुए। सूक्ष्मदर्शी, दूरबीन, कैमरा और थर्मामीटर— सब सत्रहवीं शताब्दी की देन हैं। इन सब यंत्रों/साधनों में पारदर्शी रंगहीन कांच से बने दर्पण, लैन्स, प्रिज्म और नलियों का उपयोग होता है।

18वीं और 19वीं शताब्दी में इंग्लैंड का इस कला पर वर्चस्व रहा। और 20वीं शताब्दी में दुनिया भर में ज़्यादातर कांच का सामान मशीनों से बनता है और कांच बनाने के तरीके इतने आसान हो गए हैं कि अब इन तकनीकों पर किसी देश का एकाधिकार नहीं रहा। हां, फिर भी बहुत ही अच्छा कांच अब भी दुनिया में कुछ ही जगहों पर बनता है।

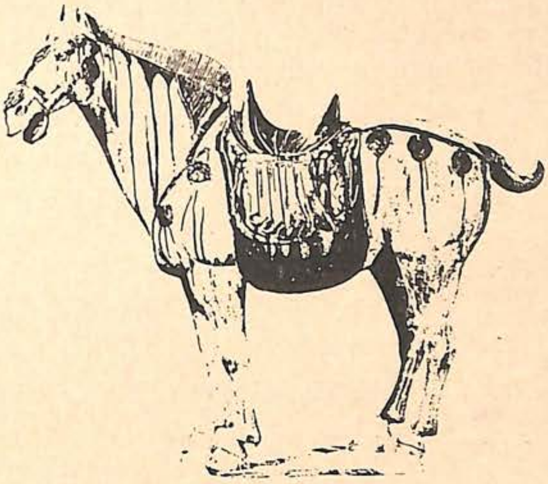
☐ राजेश खिंदरी

चीनी मिट्टी

कांच और चीनी मिट्टी की चीज़ें एक से दिखने के बावजूद अलग-अलग तरह की होती हैं। दोनों ही हाथ से छूने पर सख्त लगती हैं और गिर जाने पर चकनाचूर भी हो जाती हैं। हां कांच पारदर्शी है और चीनी मिट्टी अपारदर्शी। वास्तव में कांच और चीनी मिट्टी की बनावट में काफी समानताएं हैं।

पहली बार चीनी मिट्टी की चीज़ें कहां और कब बनी इसका उल्लेख नहीं मिलता है। पर उन्हें बनाने का काम सोलहवीं शताब्दी के पहले से चला आ रहा है। कहा जाता है कि चीन और जापान में यह काम सदियों से हर घर में होता रहा है। चीनी मिट्टी की यह कला चीन से जापान और कोरिया होती हुई यूरोप पहुंची। भारत में यह मुगल साम्राज्य के साथ आई।

इस समय चीनी मिट्टी के लिए ज़मीन की निचली सतहों की मिट्टी का इस्तेमाल होता था। ऐसी मिट्टी जिस पर बाहरी प्रकाश पानी या वनस्पति का असर नहीं हुआ हो। ऐसी मिट्टी में करीब 40% पत्थर और 60% मिट्टी होती है। बिलकुल सफेद चीनी मिट्टी के मिश्रण में पत्थर की मात्रा अधिक होती है। सफेद चीनी मिट्टी अधिक मज़बूत होती है।





रासायनिक तौर पर चीनी मिट्टी मुख्यतः दो पदार्थों से बनाई जाती है। मज़बूती लाने के लिए केयोलिन (एक तरह की सफेद चिकनी मिट्टी), दूसरा चमक लाने के लिए क्वार्टज् (सिलिकन डाइ आक्साइड : एक चमकदार और रवेवाला पदार्थ) या फेल्स्पार (रवेदार खनिज पदार्थ)।

इन सबके मिश्रण का बारीक चूर्ण बनाकर, धोकर सुखा लिया जाता है। फिर इसे आटे जैसा मिलाकर सांचों में भरा जाता है। आमतौर पर सांचे प्लास्टर आफ पेरिस से बनते हैं। सांचों से निकली वस्तुओं को दो बार भट्टी में पकाया जाता है। पहली बार सख्त करने और पानी को रोकने लायक बनाने के लिए 950° सेंटीग्रेड ताप पर पकाया जाता है।

वस्तुओं की ग्लेजिंग के लिए मूल मिश्रण में क्वार्टज् या फेल्स्पार की मात्रा बढ़ाकर उसमें रंग मिलाए जाते हैं और इसकी परत चढ़ाई जाती है। पकाने के दूसरे भाग में चीज़ों को बीस से तीस घंटे तक 1370° सेंटीग्रेड से 1560° सेंटीग्रेड तक गर्म किया जाता है। पकाने के लिए परंपरागत लकड़ी की भट्टी और बिजली की भट्टी दोनों का उपयोग होता है। पकने के बाद कांच की चीज़ों की तरह इन्हें भी दो-तीन दिन तक ठंडा किया जाता है। ठंडे हो जाने पर इनमें चित्रकारी की जाती है।

☐ दुलदुल विस्वास



सवालीराम

☐ *कांच कैसे बनता है?*

— जयंत कुमार नागर, नामली, रतलाम।

कांच का यह सवाल पढ़कर तुम्हें चश्में, चूड़ियां, बोतलें, आइने, गिलास, बल्ब, खिड़की के शीशे, परखनली, उफननली और न जाने किन-किन चीज़ों का ध्यान हो आया होगा। कांच की बनी ये चीज़ें जितनी रोचक लगती हैं उतनी ही मज़ेदार कांच बनाने की प्रक्रिया भी है।

कांच रेत (सिलीका) सोडा और चूने को मिलाकर खूब गर्म करने से बनता है। इन तीनों पदार्थों को भट्टी में तब तक गर्म किया जाता है जब तक ये अच्छी तरह पिघल न जाएं। फिर पिघली हुई अवस्था में इसे काफी देर तक रहने दिया जाता है ताकि इसमें फंसी हुई गैसें (मुख्य रूप से कार्बन डाइ-ऑक्साइड) बुलबुले बनकर निकल जाएं। अगर ऐसा न करें तो कांच पूरी तरह से पारदर्शी नहीं बन पाता—उसमें हवा के छोटे-छोटे बुलबुले दिखाई देते हैं। साथ में कुछ कमज़ोर भी हो जाता है और आसानी से टूट सकता है।

किसी चीज़ की ठोकर लगने पर टूटना या न टूटना इस बात पर निर्भर है कि उसके पदार्थ में कितनी विकृतियां हैं। यदि एक ऐसी वस्तु हो जिसके पदार्थ में बुलबुले, अशुद्धियां आदि नहीं हैं और न ही पदार्थ का असमान वितरण है—तो उसमें चोट का झटका अधिक सरलता से फैल जाता है और पूरी की पूरी वस्तु कंपन करने लगती है। दरार पड़ने के लिए असमान कंपन ज़रूरी है जिससे कि वस्तु के जुड़े हुए हिस्सों के बीच का जुड़ाव टूटे। यानी कि अगर किसी पदार्थ का एक हिस्सा कंपन कर रहा है और किसी वजह से दूसरा हिस्सा कंपन नहीं कर रहा तो उस पदार्थ में दरार आसानी से पड़ सकती है। अशुद्धियां और विकृतियां इसमें मदद करती हैं। वैसे यह पदार्थ की प्रकृति पर भी निर्भर है यानी पदार्थ के अणुओं के बीच कितना आकर्षण है। धातुओं में यह आकर्षण कांच से बहुत ज़्यादा होता है।

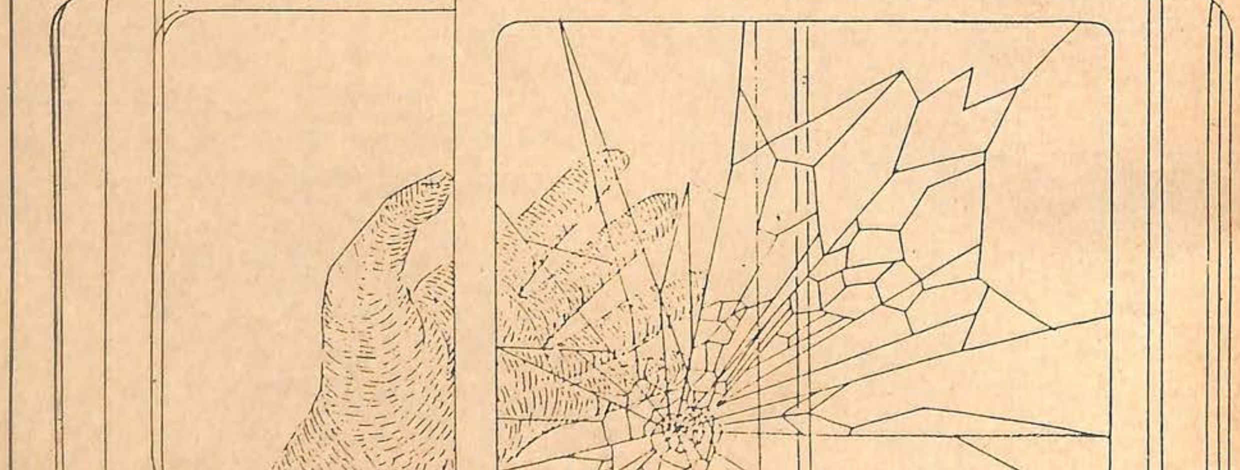
इसके बाद कांच को जिस भी आकार में ढालना हो—बोतल, गिलास, बल्ब इत्यादि उसमें ढालकर बहुत ही धीरे-धीरे कई घंटों तक ठंडा किया जाता है। ऐसा करने के लिए उन्हें एक जाली की बनी बेल्ट पर भट्टी के अंदर रख दिया जाता है। यह एक लंबी सी भट्टी होती है जिसका एक सिरा गर्म और दूसरा उसके मुकाबले ठंडा होता है। बेल्ट गर्म सिरे से ठंडे सिरे की ओर जाती है। बेल्ट की गति को तेज़ या धीमी करके कांच को चंद घंटों से कुछ दिनों तक ठंडा होने दिया जा सकता है।

ऐसा करना इसलिए ज़रूरी है क्योंकि कांच धातुओं की तुलना में उष्मा का वहन बहुत धीरे-धीरे करता है। एकदम ठंडा करने पर कांच की बाहरी सतह तुरंत ठंडी और सख्त हो जाती है। इससे काफी देर बाद अंदरूनी सतह भी ठंडी होने लगती है और ठंडी होने पर सिकुड़ती है। परंतु बाहरी सतह जो सख्त/कठोर हो चुकी होती है, इस सिकुड़ने का प्रतिरोध करती है।

कांच पर दबाव पड़ने पर या गिरने पर, कांच के अंदर या बाहरी सतह पर जहां भी ये विकृतियां होती हैं उस जगह सब से पहले दरार की शुरूआत होती है जो फिर फैलती ही जाती है। यह कुछ उसी तरह है जैसे जब कपड़े पर एक बार चीरा लग जाता है जो यह बहुत आसानी से उसके बाद फटता ही जाता है।

इसलिए कांच को ठंडा करने की प्रक्रिया जितनी धीरे की जाएगी—कांच उतना ही विकृति-रहित और मज़बूत बनेगा। ख़ासकर यह प्रयोगशाला में इस्तेमाल की जाने वाली कांच की सामग्री—बीकर, लैन्स, प्रिज़्म... के लिए काफी महत्त्वपूर्ण है—जिन्हें कई दिनों तक ठंडा किया जाता है।

कांच बनाने के लिए चाहिए तो सिर्फ सोडा, रेत और चूना ही। पर इन तीनों चीज़ों को चुनते वक्त कुछ ध्यान रखना पड़ता है। कांच बनाने के लिए आम कपड़े धोने वाला सोडा उपयुक्त नहीं है क्योंकि यह बहुत ही महीन (बारीक) होता है। इसलिए ज़्यादा गर्म करने पर काफी मात्रा में यह भट्टी से उड़ जाता है। इस वजह से कांच बनाने के लिए भारी सोडा-एश का इस्तेमाल किया जाता है।



निरापद शीशे का आविष्कार

इस शताब्दी के प्रारंभ में एक दिन फ्रांसीसी वैज्ञानिक एडॉर्ड बेनेडिक्टस् ने एक बड़ी बुरी मोटर-दुर्घटना देखी जिसमें कार की खिड़की के शीशे के उछलते हुए छोटे-छोटे टुकड़ों से एक महिला गंभीर रूप से घायल हो गई। इस दुर्घटना से उसे कुछ वर्ष पूर्व सेल्युलॉयड नामक पदार्थ से हुई छोटी-सी दुर्घटना का ध्यान आया। सेल्युलॉयड उस समय चाकुओं के दस्ते, कंघे, पियानो के पर्दे और कई अन्य चीज़ें बनाने में बहुतायत से प्रयुक्त होता था और हाथी-दांत तथा हड्डी का एक सस्ता विकल्प था और आज इसका स्थान प्लास्टिक पदार्थों ने ले लिया है। यह अल्कोहल और कुछ अन्य द्रवों में, जो शीघ्र ही भाप बनकर उड़ जाते हैं, घुल जाता है।

1888 में सेल्युलॉयड के घोल के साथ परीक्षण के अंत में घोल-भरी एक फ्लास्क प्रयोगशाला में एक ऊंची शेल्फ पर रख दी गई। यह वहां 1903 तक ऐसी ही पड़ी रही। एक दिन बेनेडिक्टस जब अपनी प्रयोगशाला साफ कर रहा था, उसने शेल्फ पर से फ्लास्क हटाया तो वह उसके हाथ से फ़िसलकर ज़मीन पर गिरा और चूर-चूर हो गया। बेनेडिक्टस को आशा थी कि गिरने के स्थान पर टूटे हुए शीशे और बिखरे हुए टुकड़ों का ढेर मिलेगा। उसके आश्चर्य का ठिकाना न रहा जब उसने देखा कि पलास्क टूट तो गया है फिर भी उसके टुकड़े आपस में इस प्रकार जुड़े हुए हैं जैसे किसी गोंद से चिपकाए हुए हों।

उसने टूटे हुए फ्लास्क को उठाया और उस पर 15 वर्ष पूर्व लगाया गया लेबल पढ़ा। इससे उसे पता चला कि फ्लास्क में सेल्युलॉयड का घोल था। बेनेडिक्टस ने सोचा कि 15 वर्षों में तरल पदार्थ पूर्ण रूप से भाप बनकर उड़ गया था जिससे फ्लास्क के अंदर की सतह पर सेल्युलॉयड की एक पर्त जम गई थी। उसने कौतूहल के लिए शेष बचे भाग को संभालकर रखने का निश्चय किया और उसके साथ ही यह भी लिखकर रख दिया कि फ्लास्क में पहले क्या था और अभी क्या घटना घटी थी।

जब बेनेडिक्टस ने मोटर-दुर्घटना देखी, तब उसे टूटे हुए फ्लास्क का ध्यान आया और फिर मस्तिष्क में एक नया विचार लेकर वह अपनी प्रयोगशाला में लौट आया। कहा जाता है कि वह वहां सारी रात तथा काफ़ी दिन चढ़े तक रहा और इस समय में उसने निरापद शीशे की शीट बनाने का तरीका ढूंढ़ निकाला।

इस निरापद शीशे में तीन पर्तें थीं, दो पर्तें शीशे की और एक सेल्युलॉयड की। अतः बेनेडिक्टस ने शीशे की हाल में खोजी गई शीटों को 'ट्रिप्लेक्स' (Triplex) नाम दिया। और 1909 में इसके निर्माण की विधि का अधिकार प्राप्त किया।

1909 से आज तक निरापद शीशे के निर्माण में अनेक सुधार हुए हैं, विशेषकर नए चिपकाने वाले पदार्थों और मुख्यतः प्लास्टिक से बने पदार्थों ने सेल्युलॉयड का स्थान ले लिया है।

('विज्ञान की कहानियां' से साभार)

रेत के कण भी न तो बहुत हल्के होने चाहिए न बहुत भारी। हल्के होने पर वे भट्टी से उड़ जाते हैं और भारी होने पर आसानी से पिघलते नहीं। कांच बनाने के लिए उपयुक्त चूना मध्यप्रदेश में सतना और कटनी के पास पाया जाता है।

इन तीनों पदार्थों के अलावा अशुद्धियों को दूर करने के लिए, बुलबुलों, गैसों के निकलने की प्रक्रिया तेज करने के लिए, पिघले हुए कांच को ज़्यादा तरल बनाने के लिए या फिर कांच को कोई विशेष रंग देने के लिए—अन्य पदार्थ भी मिलाए जाते हैं। विभिन्न रंगों के लिए ये पदार्थ मिलाए जाते हैं—

गहरे नीले-हरे रंग के लिए	—	तांबा
हरे-भूरे रंग के लिए	—	लोहा
लाल रंग के लिए	—	सोना

कांच बनाने में काम आने वाले पदार्थ में लोहे का आक्साइड अशुद्धि के रूप में होने से कांच में हल्का हरा रंग आ जाता है।

सफेद/रंगहीन, पारदर्शक कांच बनाने के लिए कम से कम अशुद्धि वाले पदार्थों का इस्तेमाल करना ज़रूरी है। खासकर लैन्स, प्रिज़्म आदि के लिए अशुद्धि-रहित कांच बहुत ही ज़रूरी है।

अब आते हैं कांच की मज़बूती पर। प्रयोगशाला में पाये जाने वाले कॉर्निंग के बीकर, फ्लास्क और उफन-नलियां तो काफी मज़बूत होती हैं। ये सब ऐसे कांच से बने होते हैं जो गर्म किए जाने पर बहुत ज़्यादा नहीं फैलता और काफी ऊंचे तापमान पर पिघलता है। इसलिए यह गर्म करने पर आसानी से नहीं टूटता। इस तरह का कांच बनाने के लिए 82% रेत, 5% सोडा और शेष 13% बोरिक आक्साइड का उपयोग किया जाता है। यह कांच $1650^{\circ}C$ पर पिघलता है। इस पर पानी और तेजाब का भी खास प्रभाव नहीं पड़ता।

कांच को अधिक मज़बूत बनाने के लिए और तीखे टुकड़ों में टूटने से बचाने के लिए प्लास्टिक का उपयोग किया जाता है। कांच की दो पर्तों के बीच में एक प्लास्टिक की पतली पर्त रखकर अच्छी तरह से चिपका दी जाती है। बुलेट-प्रूफ कांच में मज़बूती और भी बढ़ाने के लिए कांच की चार पर्तों के बीच में प्लास्टिक की तीन पर्तें सैंडविच की जाती हैं— (पर्त-दर-पर्त जमाई जाती हैं) कांच, प्लास्टिक, कांच, प्लास्टिक कांच, प्लास्टिक और फिर कांच।

अगर ऐसे कांच से कोई भारी चीज़ तेजी से टकराती है तो पहले सबसे बाहर का कांच टूटता है परंतु कांच बिखरता नहीं क्योंकि वह प्लास्टिक की सतह से चिपका हुआ है। बाहरी कांच की पर्त तोड़ने पर टकराई वस्तु की ज़्यादातर शक्ति खत्म हो जाती हैं। अगर वस्तु बहुत ही तेज़ी से आए तो दूसरा कांच भी टूट जाएगा परंतु वह भी बिखरेगा नहीं क्योंकि प्लास्टिक की दो सतहों से चिपका हुआ है।

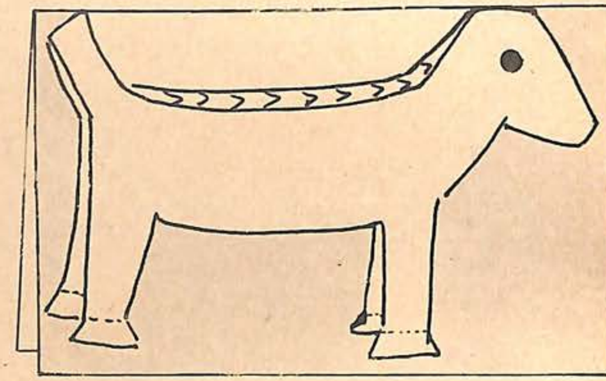
इस तरीके से बनी कांच की चार पर्तों को जो प्लास्टिक की तीन पर्तों से बंधी/जुड़ी हुई हों, तोड़ना काफी मुश्किल होता है। इस तरह के कांच का उपयोग सुरक्षा के कामों में भी होता है। ऐसे कांच को भेदना बंदूक की गोली के लिए मुश्किल होता है। ऐसे कांच का विशेष प्रकार की मोटरों, हवाई जहाज़, राकेट इत्यादि में उपयोग किया जाता है। इस तरह का कांच बुलेट-प्रूफ कांच कहलाता है।

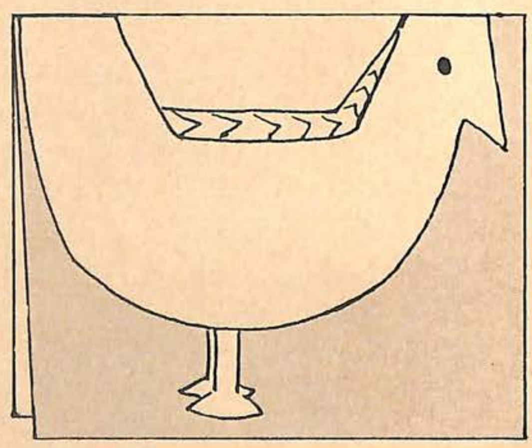
आजकल ऐसा कांच भी विकसित करने की कोशिश की जा रही है ज़िसमें कागज जितने मोटे कांच की 30-40 पर्तें होंगी और उनके बीच प्लास्टिक की पतली पर्तें होंगी। पाया गया है कि इससे कांच की मज़बूती और बढ़ जाती है।

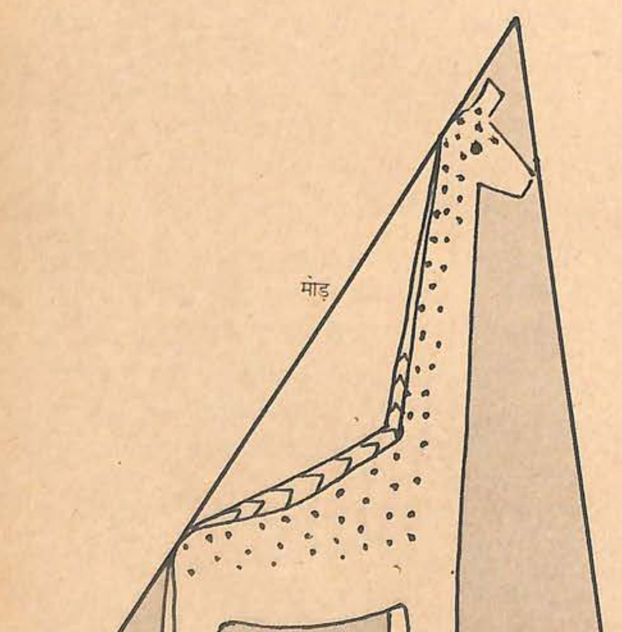
बनाओ मनपसंद आकृति

तुमने मिट्टी आदि से जानवरों, पक्षियों की आकृतियां बनाई होंगी। यहां जो आकृतियां दी गई हैं वे कागज़ से बनी हैं। सिगरेट के खाली पैकेट, चाय आदि के डिब्बे या फिर कार्डशीट से तुम भी ऐसी आकृतियां बना सकते हो।

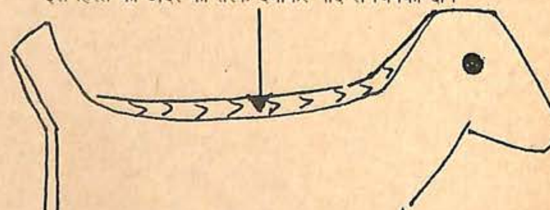
जितनी बड़ी आकृति बनाना चाहते हो उस हिसाब से एक चौकोर कागज़ लो। इसे बीच से मोड़कर दुहरा कर लो। अब किसी भी एक परत पर अपने मनपसंद जानवर, पक्षी का रेखाचित्र बना लो। मुड़ा हिस्सा ऊपर की तरफ रखना! जिराफ, बतख और कुत्ते के रेखाचित्र तो यहां दिए गए हैं। चाहो तो इनमें से कोई आकृति उतार लो। चित्रों में जो हिस्सा काला-सा दिखाया गया है उसे काटकर अलग कर दो। ऊपर पीठ की तरफ बाहर निकले हिस्से को अंदर की तरफ दबाकर गोंद लगाकर चिपका दो। पैरों के निचले हिस्से को धरातल के समांतर मोड़ दो। बस तुम्हारे मनपसंद जानवर, पक्षी की आकृति तैयार है। इसी तरह से तुम कई अन्य आकृतियां बना सकते हो।

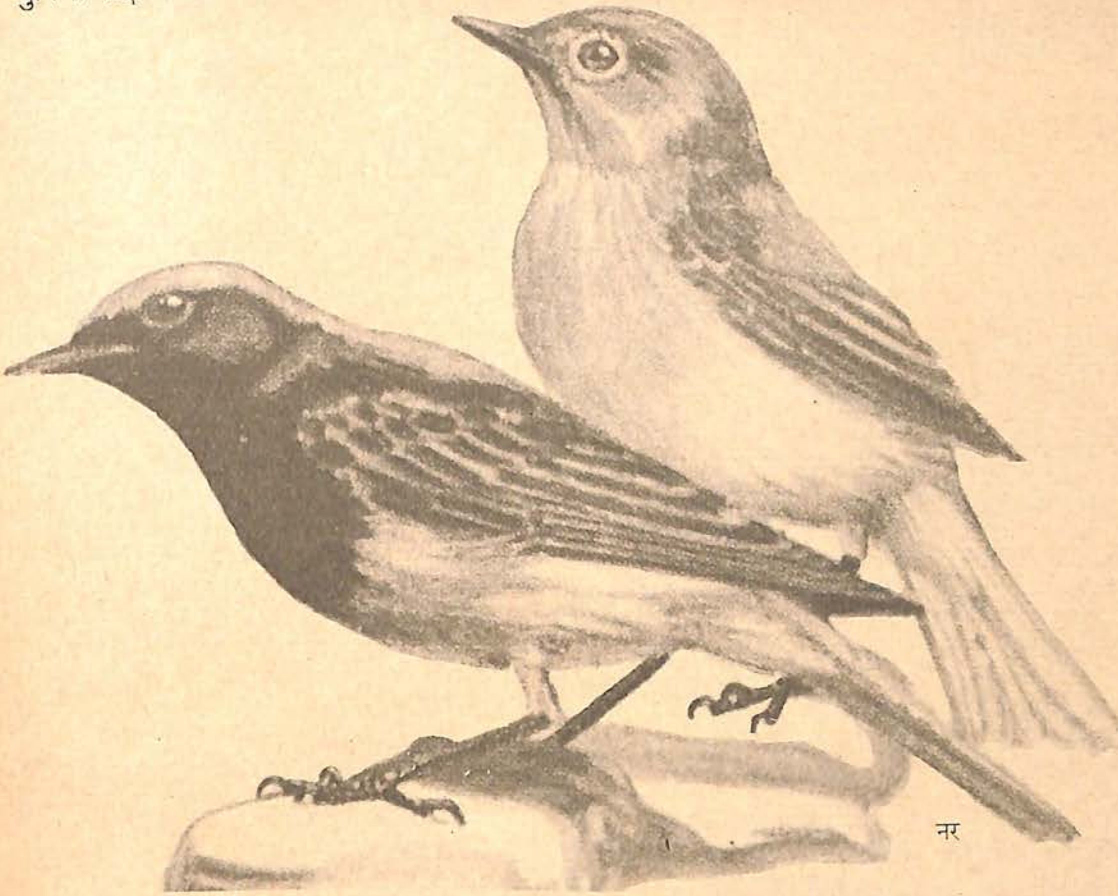






इस हिस्से को अंदर की तरफ दबाकर गोंद से चिपका दो।





थिरथिरा

बस्तियों के बाहर, बगीचों में, पेड़ों के झुरमुट में पाया जाने वाला यह छोटा-सा पक्षी सहज रूप से अपनी ओर ध्यान आकर्षित कर लेता है, क्योंकि यह अपने शरीर को बड़े विचित्र ढंग से हिलाता रहता है। यह अपने सिर तथा शरीर के अगले भाग को नीचे झुका कर फिर ऊपर उठाता है जैसे अभिवादन कर रहा हो। साथ ही यह अपनी पूंछ को भी थरथराते रहता है, जिसकी वजह से इसका नाम थिरथिरा पड़ा है।

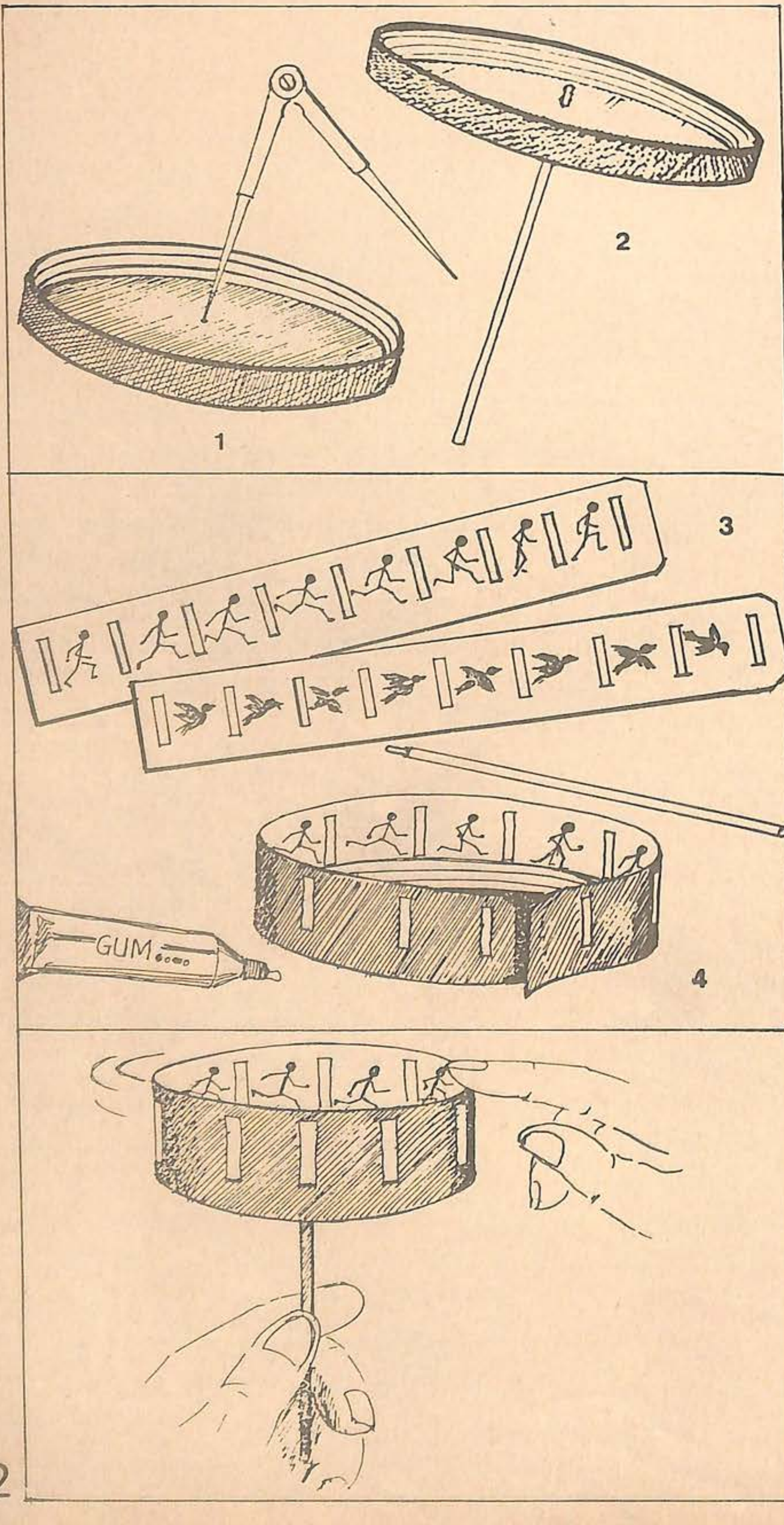
गौरैया के आकार के इस पक्षी में नर और मादा भिन्न-भिन्न रंग के होते हैं। नर के शरीर का ऊपर का भाग काला और छाती तथा पेट का रंग चमकीला भगवा होता है। मादा के शरीर में काले के स्थान पर मटमैला रंग होता है।

भारत में थिरथिरा केवल सितंबर से अप्रैल तक ही दिखाई पड़ता है। इन दिनों में इसे बाग-बगीचों, अमराइयों तथा खुले मैदानों में देखा जा सकता है। यह फुर्तीला पक्षी लगातार एक स्थान से दूसरे स्थान पर उड़ता रहता है। कभी किसी मकान की छत पर, कभी पेड़ की डाल पर तो कभी किसी बड़े पत्थर पर बैठ कर यह अपनी पूंछ थरथराता रहता है। फुर्तीला होने के कारण हवा में उड़ने वाले कीड़ों को थिराथिरा उड़कर हवा में ही पकड़ लेता है।

हमारे यहां अप्रैल-मई में गर्मी का मौसम शुरू होते ही ये पक्षी ठंडे-स्थानों पर चले जाते हैं—कुछ ईरान, तो कुछ हिमालय की ऊंचाइयों पर, तो कुछ मंगोलिया तक पहुंच जाते हैं। इन्हीं ठंडे प्रदेशों में इनका प्रजनन भी होता है। किसी मिट्टी के टीले में छेद करके या चट्टान के नीचे स्थित दरार में थिरथिरा प्याले के आकार का घोंसला बनाता है। इस घोंसले में मादा हल्के हरे-नीले रंग के 4 से 6 अंडे देती है।

□ **अरविंद गुप्ते**

(चित्र सौजन्य : बॉम्बे नेचुरल हिस्ट्री सोसायटी)



गतिशील फिल्म

माचिस की एक सुलगती तीली को हाथ में लेकर अंधेरे कमरे में नचाओ। क्या तुम्हें प्रकाश के अलग-अलग बिंदु दिखते हैं? नहीं न! प्रकाश तुम्हें एक वक्र रेखा के रूप में दिखेगा। अगर तुम चाहो तो अपने हाथ को तेज़ी से घुमाकर कई तरह के नमूने बना सकते हो। चकमक के पिछले किसी अंक में तुमने कापी के पन्नों पर क्रमवार बदलते चित्रों की कड़ी बनाई थी। जब कापी के इन पन्नों को तेज़ी से एक-एक करके छोड़ते हैं तो ऐसा लगता है जैसे चित्रों में हलचल हो रही है।

आओ ऐसा ही एक और प्रयोग करते हैं। लगभग दस सेंटीमीटर व्यास का प्लास्टिक या टीन का एक ढक्कन लो। उसके केंद्र में कील या किसी अन्य चीज़ से एक बारीक छेद करो (चित्र-1)। इस छेद में रीफिल की नोक डालो। ढक्कन इस नोक पर आसानी से घूमना चाहिए (चित्र-2)।

अब एक मोटे कागज़ की पट्टी काटो। पट्टी ढक्कन की परिमित से थोड़ी लंबी हो। पट्टी पर क्रमवार बदलते चित्र बनाओ। इन चित्रों के बीच लंबी खड़ी खिड़कियां काटो (चित्र-3)।

अब पट्टी को ढक्कन की किनार पर चिपका दो। ध्यान रहे कि चित्र वाली सतह अंदर की ओर हो (चित्र-4)। अब ढक्कन को रिफिल की नोक पर घुमाओ। तुम्हें एक गतिशील फिल्म दिखाई देगी। पट्टी को बाहर से काला रंग देने से अंदर की फिल्म अधिक स्पष्ट दिखेगी।

☐ अरविंद गुप्ता



भाग बारह

स्कूल तो अपनी भाषा ही हमें ठीक से नहीं पढ़ाता है अन्य भाषाओं की तो क्या बात करें! स्कूल न तो हमें गाना सिखाता है और न अपने हाथ-पांव का सही इस्तमाल! न वह स्वस्थ्य पोषण के बारे में कुछ बताता है और न ही वह तरीका जो हमें सफलतापूर्वक संस्थाओं के जंगल में सही रास्ता बताए। एक मरीज या शिशु की देखभाल के बारे में स्कूल कुछ नहीं बताता!

अगर अधिकांश लोग खुद गाना-बजाना नहीं जानते हैं तो लाखों रिकार्ड व कैसेट खरीदते हैं। अगर उन्हें संतुलित भोजन के बारे कुछ भी नहीं मालूम है तो डाक्टरों व दवा कम्पनियों को पैसा देते हैं अपनी बीमारियों के लिए। अगर उन्हें अपने बच्चों की देखभाल नहीं आती है तो इस काम के लिए आया रखते हैं, अगर उन्हें एक रेडियो या नल को सुधारना नहीं आता है या एक मामूली मोच या जुकाम को बिना दवाई ठीक करना नहीं आता....
यह इसलिए है कि स्कूल का एक अस्वीकृत मिशन यह बन गया है कि वह कामगार और ग्राहक पैदा करे... या सरकार के विभिन्न कामों—वाणिज्य, उद्योग आदि के लिए नौकर पैदा करे।

A GORZ (14)



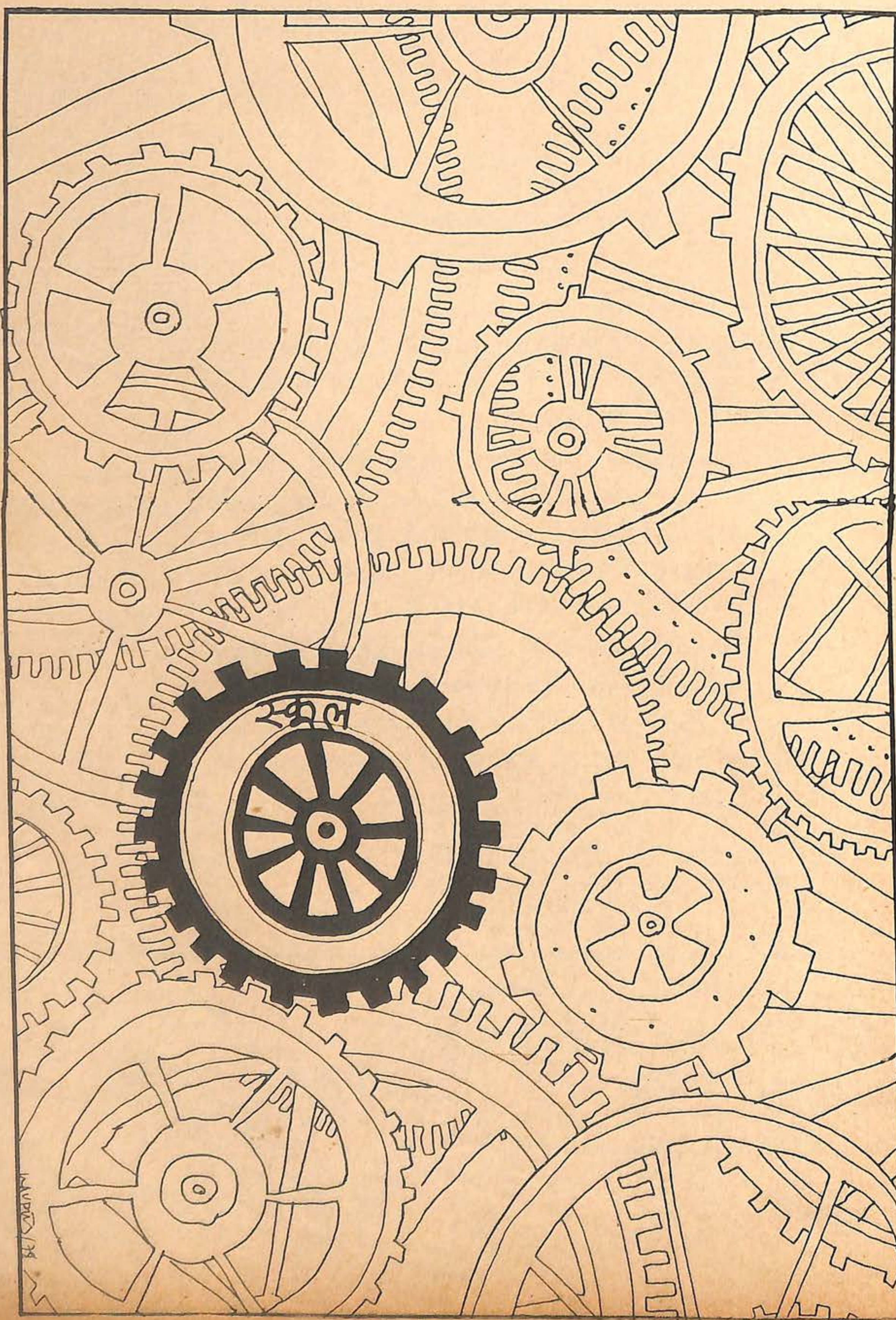

तो.. इसका मतलब यह है कि जिस स्कूल से उम्मीद थी कि वह सबको बराबर-बराबर मौका प्रदान करेगा, वास्तव में उस गैरबराबरी को बरकरार रखता है जो सामाजिक वर्गों में है?
जिस स्कूल से हमें उम्मीद थी कि वह उद्धार करेगा और मुक्ति दिलाएगा वह तो वास्तव में निर्भरता को ही बड़ा रहा है।



छात्र	पालक	और शिक्षक
क्या उनको यह अधिकार है कि कोई परिवर्तन ला सकें?	क्या वे इस डर से चुप नहीं हैं कि अगर उसी व्यवस्था को ललकारेंगे जो उनके बच्चों को डिग्री प्रदान करती है तो उनके बच्चों का क्या होगा? जो इस व्यवस्था से सबसे कम फायदा उठाते हैं—किसान व मज़दूर वर्ग—और जिनसे प्रतिक्रिया की अधिक उम्मीद होनी चाहिए, क्या वे सतही तर्क के शिकार नहीं हैं जो समझदार लोग उन्हें देते हैं (कि तुम लोगों के बच्चे आलसी हैं, कम बुद्धि के हैं वगैरह वगैरह)। और उनमें से जो इक्का-दुक्का सफलता पा भी लेते हैं उनके सामने आंकडों को एक खास ढंग से पेश करके और यह कहकर कि देखो शिक्षा तुम्हारे वर्ग को कितना आगे बढ़ा रही है, क्या उन्हें बेवकूफ नहीं बनाया जाता?	क्या उनके पास व्यवस्था को स्वीकार लेने या इस्तीफा देने के अलावा कोई और विकल्प है?



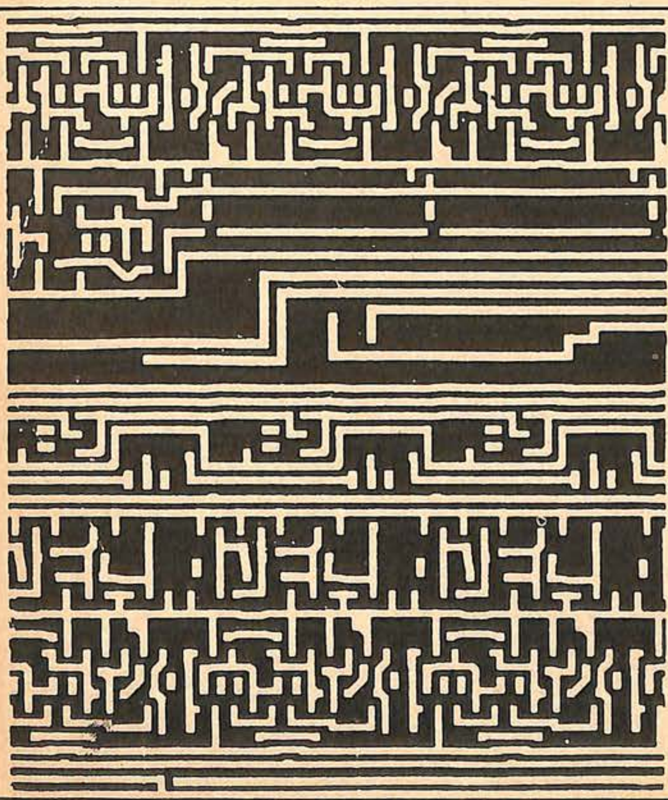
स्कूल अपने आप में सामाजिक तंत्र का एक पुर्ज़ा है?



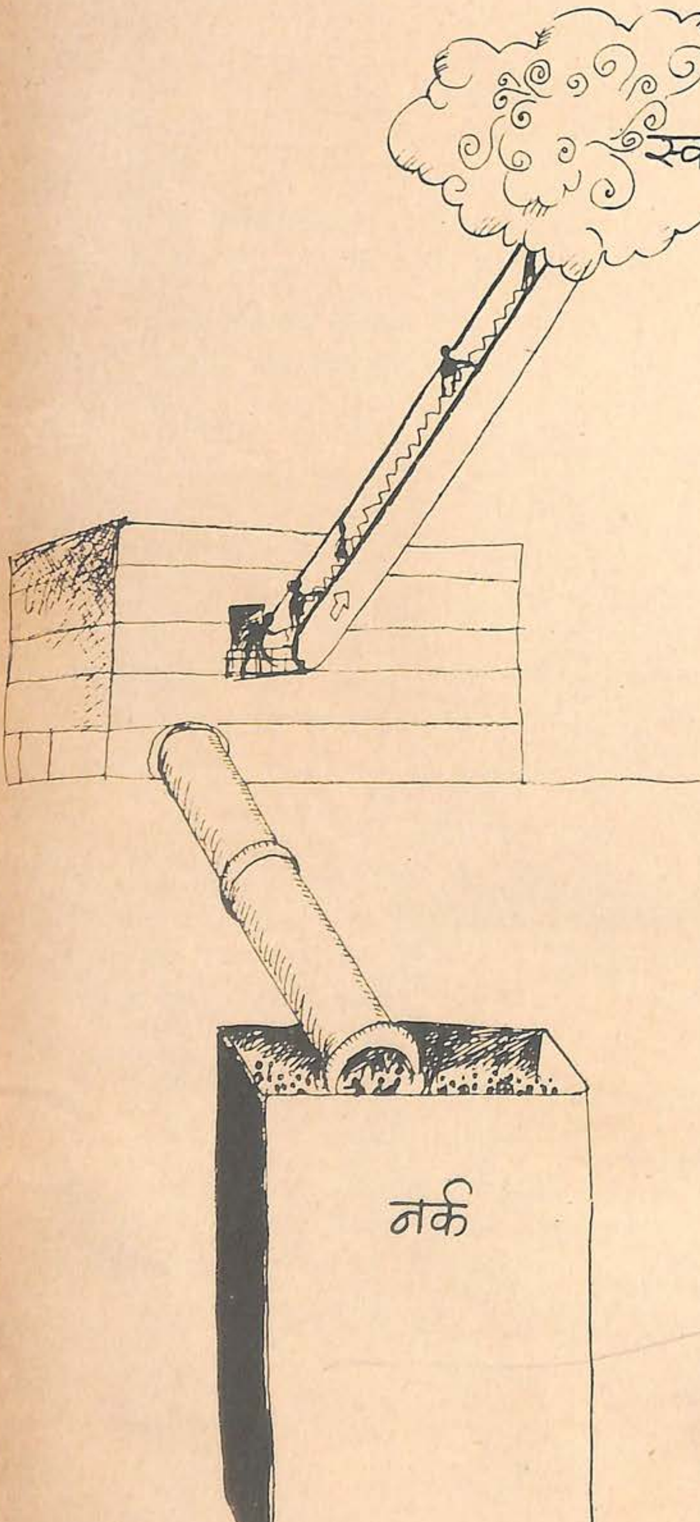
एक पुर्ज़ा है?



हम यह कह सकते हैं कि हमेशा से और हर समाज में शिक्षा का यही उद्देश्य रहा है कि नई पीढ़ियों को एक वयस्क जीवन के लिए तैयार किया जाए।



लेकिन यह बात भी समझनी होगी कि ऐतिहासिक रूप से समाज के उत्पादन के तरीके ही यह तय करते हैं कि ज्ञान व जानकारी किस रूप से देनी चाहिए व कौन से मूल्य और व्यवहार शिक्षा के माध्यम से आगे बढ़ाने चाहिए!



आजकल के औद्योगिक समाज में काम व सामाजिक जीवन कुछ इस तरह तय हो गया है कि एक बुद्धिजीवी वर्ग प्रबंध व वैज्ञानिक/तकनीकी कंट्रोल हाथ में रखे और बाक़ी काम अन्य लोग करें।

इस तरह से काम के बंटवारे में एक सामाजिक बंटवारा निहित है, जिसकी चोटी पर गिनती के कुछ लोगों की ज़रूरत है। इनके पास उच्च-शिक्षा व उच्च तकनीक है। बाकी जो हैं फैक्ट्रियों, दुकानों, दफ्तरों या खेतों में जी-तोड़ मेहनत करें, जिसके लिए उच्च शिक्षा की कोई ज़रूरत नहीं है।

इसी तर्क के आधार पर स्कूल भी पास-फेल व चुनने के तरीके से इस समाज के भीतर के अलगाव को सहारा देता है। वह इस तरह कि :

> एक तरफ हैं विश्वविद्यालय व तकनीकी संस्थान जहां उच्च शिक्षा की मदद से विशेषज्ञ बनाए जाते हैं, जो बाद में इंजीनियर, योजना बनाने वाले, प्राध्यापक व डॉक्टर बन जाते हैं और इनकी सूझ-बूझ ही बाद में अन्य लोगों का भविष्य तय करती है और उनकी 'उन्नति' भी!
>
> दूसरी तरफ हैं तमाम ऐसे पेशे जिनमें शिक्षा प्रणाली से छटे हुए असफल व्यक्ति जाते हैं।

एक तरह से देखें तो इस गैरबराबरी वाले समाज में शिक्षा प्रणाली में फेल हुए व्यक्तियों की उतनी ही अहमियत है जितनी कि उच्च शिक्षा प्राप्त लोगों की–आखिर यह निचले 'दर्जे' के काम कौन करेगा?

रूपांतरण : विनोद रायना
(अगले अंक में जारी)

फाइबर ऑप्टिक्स संचार प्रणाली

तकनीक का उद्‌विकास :

परंपरागत माध्यमों जैसे रेडियो तरंग, सूक्ष्म तरंग आदि की तुलना में, प्रकाश द्वारा प्रेषण के महत्वपूर्ण लाभ पूर्व से ही ज्ञात थे। टेलीफोन के आविष्कारक, एलेक्ज़ेंडर ग्राहम बेल ने लगभग 110 वर्ष पूर्व ही यह सिद्ध कर दिया था कि प्रकाश के माध्यम से ध्वनि का प्रेषण संभव है। परंतु उस समय ऑप्टिकल संचार प्रणाली को व्यावहारिक सफलता दो कारणों से नहीं मिल सकी, (1) गहन प्रकाश के एकरंगी स्रोत का अभाव एवं (2) प्रकाश को बिना किसी ह्रास (क्षय) के लंबी दूरी तक पहुंचाने के लिए उपयुक्त माध्यम का अभाव।

वर्ष 1960 में लेज़र के आविष्कार से बहुप्रतीक्षित एकरंगी स्रोत उपलब्ध हुआ और ऑप्टिकल संचार के विकास की गतिविधियां एक बार पुनः आरंभ हो गई। वर्ष 1970 में कम ह्रास वाले ऑप्टिकल फाइबर के विकास के साथ 20 डीबी/किमी से भी कम ह्रास पर लंबी दूरी तक प्रकाश के संकेतों का प्रेषण संभव हो सका, और एकाएक फाइबर ऑप्टिक संचार संभव लगने लगा।

वाणिज्यिक फाइबर ऑप्टिक संचार संयंत्र सर्वप्रथम वर्ष 1977 में प्रतिष्ठापित किए गए। इसके साथ ही बड़े पैमाने पर इस तकनीक से संबंधित विभिन्न क्षेत्रों में अनुसंधान तथा विकास की गतिविधियां आरंभ हुईं। परिणामस्वरूप विभिन्न संघटकों के प्रदर्शन में बहुत अधिक सुधार हुआ, कीमतें कम हुईं तथा नए प्रकार के फाइबर स्रोत तथा अन्य संघटकों का विकास हुआ। और आज 0.5 डीबी/किमी से भी कम ह्रास वाले उच्च श्रेणी के ऑप्टिकल फाइबर का व्यापक उत्पादन हो रहा है तथा फाइबर ऑप्टिक संचार संयंत्र संपूर्ण विश्व में विभिन्न उपयोगों के लिए नियमित रूप से प्रतिष्ठापित किए जा रहे हैं।

फाइबर ऑप्टिक प्रेषण के मूल तत्व :

एक ऑप्टिक फाइबर प्रेषण संयंत्र, प्रकाश स्रोत तथा उससे संबंधित सर्किट से युक्त ट्रांसमीटर, ऑप्टिकल फाइबर केबल तथा एक फोटोडायोड, एम्प्लीफिकेशन तथा संकेत एकत्रित करने वाले सर्किट से युक्त, रिसीवर से बनता है। फाइबर ऑप्टिक संचार संयंत्र में विद्युतीय संकेतों में उपलब्ध सूचनाओं को प्रकाशीय संकेतों में प्रकाश स्रोत द्वारा परिवर्तित कर ऑप्टिकल फाइबर द्वारा प्रेषित किया जाता है। इन प्रकाशीय संकेतों को दूसरे छोर पर फोटो-डिटेक्टर द्वारा प्राप्त किया जाता है, जो इन्हें पुनः विद्युतीय संकेतों में परिवर्तित करता है। जब एक प्रकाशीय संकेत 40-50 किमी की दूरी तय करता है तो यह संकेत क्षीण हो जाता है तथा इसका स्वरूप खोने लगता है। अतः इन संकेतों को पुनः प्रबल करने तथा वास्तविक स्वरूप प्रदान करने के लिए एक रिपीटर उपकरण का उपयोग किया जाता है। सैमीकण्डक्टर इन्जेक्शन लेज़र डायोड और लाइट एमिटिंग डायोड, फाइबर ऑप्टिक प्रेषण के लिए उपयुक्त प्रकाश स्रोत है। लेज़र डायोड का उपयोग प्रायः लंबी दूरी तथा लाइट एमिटिंग डायोड का उपयोग कम दूरी के संप्रेषण के लिए होता है।

परंपरागत प्रेषण माध्यमों से तुलना :

परंपरागत प्रेषण माध्यमों (जैसे, तांबे के तार, को-एक्ज़िअल केबल, उपग्रह तथा सूक्ष्म तरंग) की तुलना में फाइबर ऑप्टिक प्रेषण के लाभ निम्न हैं :

— अधिक सूचनाओं का प्रेषण।

— संकेतों का न्यूनतम ह्रास, जिससे रिपीटर उपकरण की आवश्यकता कम होती है।

— अत्यधिक प्रेषण क्षमता। एक ऑप्टिकल फाइबर के युग्म पर वर्तमान संयंत्रों से 7680 व्यक्ति एक साथ वार्तालाप कर सकते हैं। अतः इनकी लागत बहुत कम होती है तथा इनका रखरखाव खर्च भी बहुत कम आता है।

— ऑप्टिकल फाइबर का व्यास सिर्फ 0.125 मि.मी. होता है तथा इसका भार परंपरागत केबल के अनुपात में $^{1}/_{3}$ - $^{1}/_{10}$ होता है। इस कारण इनका परिवहन तथा प्रतिष्ठापन अत्यधिक सुविधाजनक है।

— फाइबर ऑप्टिक केबल पर विद्युतीय तथा चुंबकीय प्रभावों का असर नहीं होता। अतः इनका उपयोग ज्वलनशील अथवा विस्फोटक वातावरण में भी किया जा सकता है।

— प्रेषित संकेत गोपनीय रहते हैं, क्योंकि इन संकेतों को अंतारोध नहीं किया जा सकता।

— तांबे एवं अन्य धातुओं के साधन सीमित होने के कारण इनके केबल की कीमत लगातार बढ़ रही है। जबकि ऑप्टिकल फाइबर सिलिका से बनाए जाते हैं, जो कि बहुतायत में उपलब्ध हैं।

उपयोगिताएं :

ऑप्टिकल फाइबर संचार संयंत्र का उपयोग कई प्रकार के संदेशों को संप्रेषित करने के लिए किया जा रहा है।

इन संयंत्रों की अधिकतम उपयोगिता लंबी दूरी, तीव्र गति, एक स्थान से दूसरे स्थान पर सीधे संदेशों का आदान-प्रदान करने में है। अतः फाइबर ऑप्टिक संचार संयंत्र अंतर्महाद्वीप, अंतर्नगर तथा अंतःनगर नेटवर्क एवं समुद्रीय संचार व्यवस्था में अधिमान्य है।

ऑप्टिकल फाइबर संयंत्र के विभिन्न आकर्षक तत्वों जैसे कम भार तथा छोटे आकार के कारण इनका कम्प्यूटर, वायुयान, जलपोत, ऑटोमोबाइल, स्थानीय क्षेत्र नेटवर्क एवं प्लांट और मशीनों, की प्रक्रिया के नियंत्रण में भी लाभकारी उपयोग है।

ऑप्टिकल फाइबर संयंत्रों का उपयोग ऊर्जा, रक्षा, रेलवे, खनन, तेल तथा प्राकृतिक गैस क्षेत्रों में भी हो रहा है।

अनुसूचित जाति एवं जनजाति विद्यार्थियों के हक में सरकार की सुविधायें

कक्षा	सामान्य छात्रवृत्ति (प्रतिमाह)		प्रावीण्य छात्रवृत्ति (प्रतिमाह)	यदि छात्रावास अथवा आश्रम में रहते हों तो शिष्यवृत्ति (प्रतिमाह)	
	छात्र	छात्रा		छात्र	छात्रा
पहली	--	--		150=00	160=00
दूसरी	--	--		150=00	160=00
तीसरी	--	15=00	केवल अनुसूचित जनजाति की बालिकाओं के लिये	150=00	160=00
चौथी	--	15=00		150=00	160=00
पांचवीं	--	15=00		150=00	160=00
छठी	20=00	30=00	40=00	150=00	160=00
सातवीं	20=00	30=00	40=00	150=00	160=00
आठवीं	20=00	30=00	40=00	150=00	160=00
नौवीं	30=00	40=00	50=00	150=00	160=00
दसवीं	30=00	40=00	50=00	150=00	160=00

○ हाईस्कूल परीक्षा की राज्य स्तरीय मेरिट लिस्ट में स्थान पाने पर पुरस्कार। 5000=00

○ हाईस्कूल परीक्षा में जिलास्तर पर अनुसूचित जाति/जनजाति के विद्यार्थियों में सर्वाधिक अंक पाने पर पुरस्कार। * 1000=00

* एक आदिवासी/हरिजन छात्र को एवं * एक आदिवासी/हरिजन छात्रा को

- छात्रावास/आश्रम में मिलने वाली शिष्यवृत्ति के साथ-साथ अब छात्रवृत्ति भी मिलेगी।
- लगन और मेहनत से पढ़ाई करके दसवीं कक्षा की सालाना परीक्षा की "मेरिट लिस्ट" में स्थान पाने वाले छात्र को साल में 7,300 और छात्रा को 7,500 रुपये तक प्राप्त हो सकते हैं।
- इसी परीक्षा में जिला स्तर पर सबसे ज्यादा अंक पाने पर छात्र को 3,300 रुपये और छात्रा को 3,500 रुपये तक मिल सकते हैं।

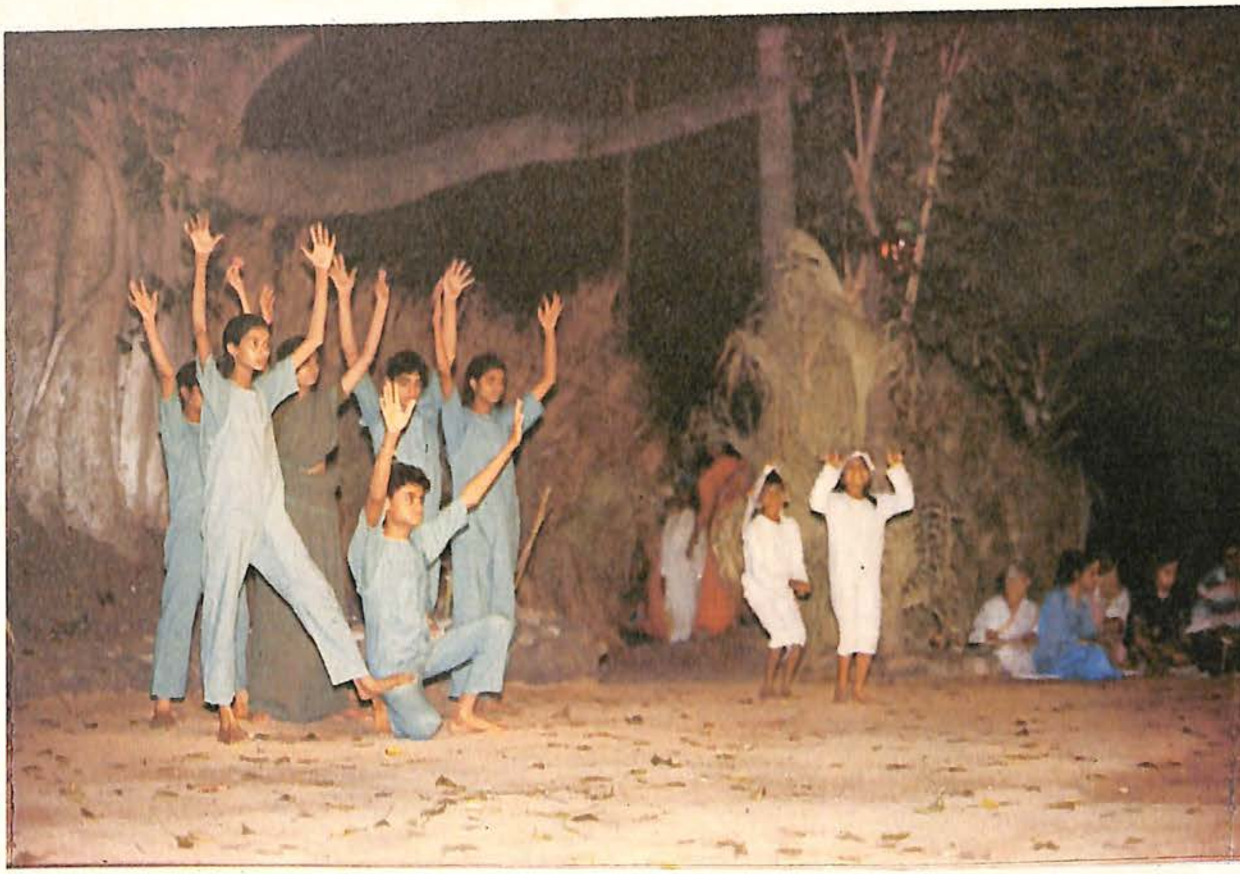
विशेष प्रोत्साहन/सुविधायें :

(1) पांच प्रतिशत से कम महिला साक्षरता वाले 88 विकास खण्डों की 38 जनजातियों की पांचवीं पास करने वाली बालिका को 250 रुपये की प्रोत्साहन राशि।

(2) पांच प्रतिशत से कम साक्षरता वाली 23 जनजातियों के बच्चों को कक्षा 6 से 8 तक 40 रुपये और कक्षा 9 से 10 के लिये 50 रुपये प्रतिमाह विशेष छात्रवृत्ति।

इन सुविधाओं का लाभ लेने के लिये विद्यार्थी अपने शाला प्रमुख/विकास खण्ड अधिकारी/विकास खण्ड शिक्षा अधिकारी अथवा जिला संयोजक/सहायक आयुक्त कार्यालय से सम्पर्क करें।

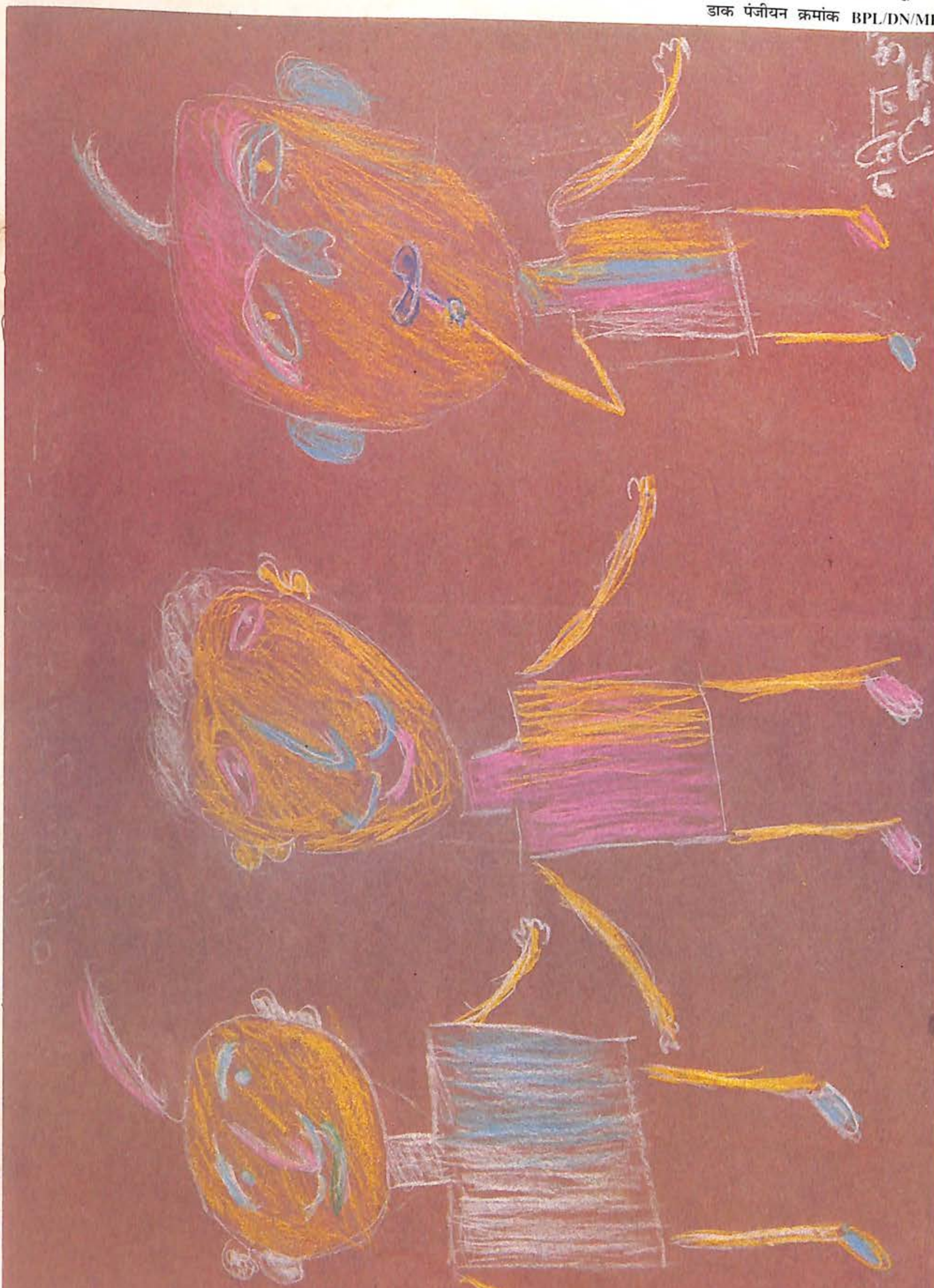
म.प्र. माध्यम/89



इंदौर रंग शिविर में खेले गए नाटक -एक था जंगल, के दो दृश्य ।



पंजीयन क्रमांक 1317/सी/85 के अंतर्गत भारत के समाचार-पत्रों के रजिस्टार द्वारा पंजीकृत।
डाक पंजीयन क्रमांक BPL/DN/MP/431/89



नवीन कुमार

एकलव्य के लिए विनोद रायना द्वारा प्रकाशित।
कंपोज़र्स - अभिषेक। मुद्रक - भंडारी ऑफसेट प्रिंटर्स, भोपाल।